द्वितीय संस्करण

१९४५ ई०

मुद्रक—बाबू काशी प्रसाद भार्गव, सुलेमानी प्रेस, काशी।

अनुक्रम

परिचय

रूसी-साहित्य के इतिहास में १९वीं सदी के आखिरी पचास साल विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इस ज़माने में यथार्थवाद का बोलबाला रहा। तुर्गनेव, डोस्टावेस्की, टाल्सटाय, एन्टन चेखोफ़ जैसे संसार-प्रसिद्ध रियलिस्टिक लेखकों की रचनाएँ इसी अर्से में प्रकाशित हुईं। चेखोफ़ इस स्कूल का अन्तिम महान् लेखक है। १९०४ में, उसकी मृत्यु के बाद, सिम्बोलिस्ट स्कूल ने विजय पाई।

रूसी यथार्थवाद-स्कूल की कुछ विशेषताएँ हैं, जो न्यूनाधिक मात्रा में इस ज़माने की हरेक रचनाओं में पाई जाती हैं—घटनाओं की बनिस्बत चरित्र-चित्रण पर अधिक ज़ोर देना, अलंकार और आडम्बर-युक्त शैली की उपेक्षा, कथा-वस्तु की नींव में तात्कालिक रूसी-जीवन। एक बात और ध्यान देने योग्य है। सभी रचनाओं का एक ख़ास उद्देश्य है—सामयिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को हल करना।

सन् १८९३ तक मैदान खाली होने लगा था। तुर्गनेव, डास्टावेस्की, टाल्सटाय जैसे स्रष्टाओं की लेखिनी विश्राम लेने लगी थी। नये लेखकों में ऐसा कोई न था, जो इनका प्रसंगा भी बैठे। ऐसे ही समय चेखोफ़ साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुआ। उसने कहानी-कला में कमाल हासिल किया। वह विश्व-कथा-साहित्य का एक युग-प्रवर्तक लेखक माना जाता है। रूसी-साहित्य पर उसका कितना प्रभाव है, यह इसी बात से जाना जा सकता है कि इतिहास में यह ज़माना 'चेखोवेस्की नेस्ट्रोनी' ('चेखोफ-दिमाग़ का ज़माना') के नाम से प्रसिद्ध है। यह इसलिए नहीं कि चेखोफ इस ज़माने का सबसे महान्

पुरुष है; बल्कि इसलिए कि चेख़ोफ़ ने अपनी कहानियों द्वारा इस ज़माने का चित्र उपस्थित किया है।

एन्टन पेवोलिच चेख़ोफ़ बृहस्पतिवार के दिन, १७ जनवरी १८६० में पैदा हुआ था। दक्षिणी-रूस में एज़ोव समुद्र-तट के निकट एक कस्बा है — जगनरोग। यही उसका जन्म-स्थान है। उसके माँ-बाप साधारण से किसान थे। इसी वातावरण में उसका लालन-पोषण हुआ।

चेख़ोफ़ का व्यक्तिगत जीवन कोई विशेष महत्त्व-पूर्ण नहीं है। अपने अन्य साथियों की भाँति उसने भी कितनी उम्मीदों के साथ डॉक्टरी पास की। जब उसने देखा कि डॉक्टरी की अपेक्षा कहानियाँ लिखने में ज़्यादा पैसा मिलता है, तो वह इसी ओर झुक गया।

उसकी पहली रचनाएँ चौदह वर्ष की उम्र में प्रकाशित हुई थीं। शुरू में वह अपना नाम देता था — एन्टोशाचेखोन्टी। धीरे-धीरे उसकी लेखिनी प्रौढ़ता प्राप्त करने लगी। सन् १८८६ में उसकी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। इसी साल उसने मास्को के सुप्रसिद्ध समालोचक ग्रीकोविच से परिचय प्राप्त किया। इसके बाद उसकी ख्याति दिन पर-दिन बढ़ती गई। १८६० के बाद उसकी जितनी रचनाएँ प्रकाशित हुईं, सभी बेजोड़ हैं। यह कहना बहुत कठिन है कि उनमें कौन ज़्यादा अच्छी है।

चेख़ोफ़ के लिखने का ढंग वर्णनात्मक है। वह अपने पात्रों की भावनाओं का विश्लेषण नहीं करता; बल्कि इस तरह की परिस्थितियाँ उपस्थित कर देता है कि हम अलक्ष्य-रूप से उनसे सहानुभूति करने लगते हैं। इस दिशा में वह तुर्गनेव का अनुगामी कहा जा सकता है—डोस्टावेस्की अथवा टाल्सटाय का नहीं। लेकिन, उसकी पूँजी इसके सिवा कुछ और

है। उसकी कहानियों में ग़ज़ब की समता (evenness) होती है। एक-एक शब्द चुने हुए, जिसमें कोई भी घटाया अथवा बढ़ाया नहीं जा सकता। अगर ऐसा किया जाय, तो कहानी का प्रभाव नष्ट हो जायगा। इस तरह वह गद्य लिखने में तुर्गनेव से भी श्रेष्ठ है, जिसका नाम इस प्रकार का गद्य लिखने में सबसे पहले लिया जाता है।

चेख़ोफ़ की एक विशेषता और है। अपने अन्य सहयोगियों की भाँति उसकी कहानियाँ चरित्र-प्रधान नहीं हैं। वह शायद चरित्र से पहले घटना को ढूँढता था। इसी घटना के प्रकाश में उसके पात्र का सारा जीवन, उसकी मानसिक अवस्था आप-ही-आप दिखाई पड़ने लगती है। वह नख-सिख की बारीकियों में अपने को नहीं उलझाता, जैसा कि युरोपियन कहानी-लेखकों का दस्तूर है। न वह कोई असाधारणता पैदा करता है ; बस, वह अपने चित्र की कुछ मोटी रेखाओं की ओर संकेत कर देता है, और आश्चर्य कि हम उसकी बारीकियों तक को समझने लगते हैं।

चेख़ोफ़ ने कई नाटक भी लिखे हैं, जिनमें 'शाहदाने का बाग़' सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। १८६८ के बाद उसने कई बार युरोप की यात्रा की। उसके जीवन-काल में ही उसकी कहानियों का इक्कीस भाषाओं में अनुवाद हुआ, और कुछ भाषाओं में तो कई कई अनुवाद हुए। उसके दिल में मानव-जीवन को सुधारने-सँवारने का बड़ा हौसला था। मास्को से कुछ दूर उसने कुछ जमीन मोल ली थी, जहाँ वह एक आदर्श ग्राम स्थापित करना चाहता था।

१९०४ में जर्मनी के वाडेन-वाइलर नामक नगर में उसका देहान्त हुआ। शुरू जवानी में ही उसे खाँसी की शिकायत थी। यह क्षय का पूर्व चिह्न था। इसी रोग ने उसे भरी जवानी में ले डाला।

काला पुरोहित

जीवन की इनी-गिनी घड़ियों में सब कुछ भूलकर, शराब पीना और मस्त रहना, यही उसने अपना सिद्धान्त बना रखा था। अपने स्वास्थ्य की ओर उसने कभी भी विशेष ध्यान नहीं दिया। हाँ, एक दिन, शराब के झोंक में उसने अपने एक परिचित डाक्टर से पूछा। डाक्टर ने उसे आदेश दिया—वसंत की सुनहली हवा और ग्रीष्म की रजनी में यदि वह किसी देहात की शरण ले तो अच्छा हो। तभी उसे टॉनिया का एक पत्र मिला, जिसमें उसने अनुरोध किया था कि कुछ दिनों के लिए वह उसके पिता के साथ निवास करे। कोवरिन् ने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया था।

परन्तु अप्रेल के आरम्भ में उसने अपनी जन्मभूमि—अपनी जमींदारी—की ओर प्रस्थान किया। वायु के झोंकों में एक-एक क्षण उड़ाते हुए उसने वहाँ एक, दो, तीन, पूरे तीन सप्ताह व्यतीत कर दिये। और समीर के सुन्दर झोंकों ने जब उसके कान के पास आकर गुनगुनाया, कल्पना की डोरी में बँधा हुआ वह चल दिया, शराब की मस्ती में झूमता हुआ, विगत प्रतिध्वनियों को बटोर कर भूत में डालता हुआ, आगे शांति की खोज में, रूस के प्रसिद्ध माली पी ऑस्की के पास—उसे उसने पाला था। कोवरिन्का से बोरिस्का (पी ऑस्की का मकान) प्राय: सत्तर मील की दूरी पर था। वसन्त के विकसित उन दिवसों में कमानीदार गाड़ी पर बैठकर,

यात्रा करने में उसे आनन्द मिला, दुःख का लेश मात्र भी नहीं; और वह उसका अनुभव करे ही क्यों ?—कौन कहता है विश्व में दुःख है ? आप कहते हैं दुःख है, आप अनुभव करते हैं, इसीसे तो ! कुछ थोड़े-से क्षणों में, कुछ थोड़ी-सी रेखाएँ खींचकर, विश्व के केनवॉस से अपनी जीवन-तूलिका हटाकर, जब वह चला जायगा, तब उसे सुख-दुःख का कुछ भी ज्ञान न रह जायगा। फिर इतनी-सी देर के लिए हम क्यों दुःख का अनुभव करें ? मदिरा के पात्र में अपने आप को डुबोकर हम क्यों न चाहें कि शांति, सुख, स्फूर्ति, ऐश्वर्य, वैभव, विलासिता, चीख, आह, तू-तू, मैं-मैं, यन्त्रणा, रोदन, सफलता और असफलता की सीढ़ियों पर हम क्यों प्रकृति का खिलवाड़ करें ?—हम उसमें मिलें और वह हममें —इसीमें तो सब कुछ है

गिरे हुए प्लास्टर को खाकर बोरिस्का वाला वह मकान अपने प्रभु की अगाध सम्पत्ति का परिचय अपनी विशालता-द्वारा दे रहा था। बड़े-बड़े कमरे, दालान, प्रस्तर के विशाल स्तम्भ, जिनपर भयङ्करता और कला की मौन साधना करते हुए सिंह बने थे—सब कुछ एकाग्रता का परिचय देते हुए खड़े थे। उन्हें अपने ऐश्वर्य की कहानी और पतन के उन दिनों की—किसी की भी—कुछ परवाह न थी। मकान से लगा हुआ उद्यान अब अपने यौवन का अवशेष-मात्र था। सुमन-कुंज यत्र-तत्र फैलकर भी सिमटे पड़े थे। पेड़ों के नीचे लोटकर, वायु सन्-सन् ध्वनि से लोगों को राग उत्पन्न करने की मंत्रणा देती थी। शैशव के सुखद दिवसों में वह अधिकतर वहीं लेटकर कोमल भावनाओं के गीत गाया करता था। उजड़े हुए उद्यान के उस निविड़ कोण में, जिसे पो ऑस्की 'कूड़ा-घर' के नाम से पुकारा करता था, कोवरिन् की कल्पना-शक्ति जागृत हुई थी।

उस दिन रात्रि के नौ बजे कोवरिन् बोरिस्का पहुँचा। उसने अनुभव किया, जैसे टॉनिया और उसके पिता भय के उद्रेक से विचलित हो रहे हों। नीलाकाश में शुभ्र तारिकाओं का अम्बर पहने रजनी इठला रही थी, और तब वे पाला पड़ने की आशंका कर रहे थे। प्रधान माली 'इवॉन कॉर्लिच' किसी काम से नगर की ओर गया हुआ था, इसलिए वहाँ ऐसा कोई मनुष्य न था, जिसका कि वे विश्वास कर सकें।

और वे लोग उद्यान की रक्षा का उपाय सोच रहे थे। तब यह निश्चय हुआ कि टॉनिया अर्ध रात्रि तक उद्यान का निरीक्षण करे और ईगॅर-सीमानाविच उसके पश्चात् देख-भाल करता रहे।

अठखेलियों के जीवन की कल्पना में बैठे हुए कोवरिन् और टॉनिया वार्तालाप करते रहे, और जब निशा अपने यौवन के मध्याह्न पर पहुँच चुकी थी, तब वे हाथ-में-हाथ डालकर बगीचे का निरीक्षण करने गये। ऊँचे ऊँचे पेड़ों की लम्बी-लम्बी पंक्तियों में शतरञ्ज के मोहरों की भाँति खड़े हुए पुष्पों एवम् फलों के कुञ्ज और वृक्ष झूम-झूम कर वायु से बातें कर रहे थे। उनकी रक्षार्थ चारों ओर धुएँदार चीजों में आग लगा दी गई थी।

पुष्पों के एक कुञ्ज के निकट खड़े होकर उसने उससे कहा—मुझे याद है, जीवन की उन सुनहरी घड़ियों में भी मैंने इसी प्रकार धुएँदार वस्तुओं को उद्यान के निकट जलते हुए देखा था।

उसने अपने कन्धे हिलाते हुए कहा—और मैं आज तक नहीं समझ पाया कि पौधे धुएँ-द्वारा पाले से किस प्रकार बचाये जा सकते हैं।

टॉनिया ने सहज ही में कह दिया—जब आकाश वाष्प के उड़ते हुए

आवरण को उतार कर फेंक देता है, तब धुआँ उसके आसन पर बैठकर उसके कर्तव्यों का पालन करता है।

'परन्तु तुम्हारे इन पौधों की रक्षा मेघमालिका किस प्रकार करती है ?'

'घोर कालिमा में आँखें मीचे हुए वे नीरस दिन!—उन दिनों तो पाला भी उनसे घृणा करता है!'

आश्चर्य मुद्रांकित कोवरिन् के मुख-मण्डल पर भावनाओं की सैकड़ों रेखाएँ ऊँची उठ रही थीं।

स्रष्टा ने प्रकृति की तूलिका से उसके अधरों पर हास्य की भावनामयी एक सजीव रेखा खींच दी। आकाश में उठा हुआ हाथ कुछ और उठ गया; और फिर उसने टॉनिया के हाथ पर अपना हाथ रख दिया। कुछ भावनाएँ थीं, वह उन्हें बटोरने लगा।

'आज से पाँच बर्ष पहले, तुम क्या थीं, टॉनिया!—दुबली-सी, भद्दी-सी, ऊँचे ऊँचे देहाती ढंग की पोशाक पहनकर,...तब तुम कितनी कुरूपा थीं टॉनिया!'—उसने मुस्कराकर उससे कहा था।

वह हँसी थी; परन्तु उसका उत्तर न दिया।

वह कह रहा था—......मैं तुम्हें बहुत तंग करता था तब!...... केवल पाँच वर्ष के अन्तर में ही कितना अन्तर हो गया!

'हाँ, पाँच ही वर्ष तो हुए!'—टॉनिया सोच रही थी—तब से अब तक न जाने विश्व में कितने परिवर्तन हो गये! एक शरीर, जिसे हम आमोद के लिए जवानी के सरस दिनों में चूमते हैं, और फिर वह कुछ क्षणों के अन्दर ही, जीवन के अनुभवों की कल्पना करने के लिए धरित्री की शांति-प्रदायिनी गोद में जाकर प्रलयांत तक के लिए सो जाता है—बहुत-से सो गये,

इसी थोड़े-से अन्तर में। प्रकृति की गति का परिचलन करने के लिए नव-विकसित कुञ्जों में कलिकाएँ प्रस्फुटित हो जाती हैं। और इन पाँच वर्षों में न मालूम कितनी हुई होंगी। साम्यवाद के नियमों का पालन करते हुए 'उसने' न मालूम कितनों को पर्यंकशायी बनाकर फिर धवल-धरा पर लिटाया होगा और यंत्रणा की आवेगमयी धारा में बहते हुए कितने ही विलासिता के अंक में अधलेटे-से उन्माद का आसव पीते हुए कह रहे होंगे—तुम मुझे कितना सुख देती हो! आह!—यह सब कुछ इन्हीं पाँच वर्षों के अन्तर में तो हुआ। एक दीर्घ निश्वास छोड़कर उसने उससे कहा—...तुम हम लोगों के पास थे, फिर चले गये।... ..सच बताना एन्ड्री, क्या तुम्हें कभी भी इसका ध्यान हुआ कि तुम अब अलग हो गये हो? परन्तु......मैं यह तुमसे पूछती ही क्यों हूं? तुम मनुष्य हो न! तुममें विरक्तताका आविर्भाव होना स्वाभाविक ही है।......परन्तु, मैं तुमसे यह पूछने नहीं जा रही हूँ कि तुमने कभी इसपर विचार किया अथवा नहीं। मैं तो केवल इतना ही चाहती हूँ कि तुम हमें अपना समझो। इसके लिए तुम्हें कहने का मुझे अधिकार है।

'परन्तु मैं तो पहले ही ऐसा व्यवहार रखता हूं टॉनिया!'

'सचमुच? तुम सच कहते हो?'

'हाँ, विश्वास रक्खो।'

'मेरे पिता तुम्हें कितने आदर की दृष्टि से देखते हैं!......वे तुम्हारी पूजा करते हैं, एंड्री! तुम विद्वान् हो, तुम्हारे जीवन में सुख सर्वदा वैभव का पात्र लिए खड़ा रहता है।......और उन्हें इसका विश्वास है कि उनकी सतर्कता और उनके परिश्रम से ही तुम आज इस आसन पर बैठ सके हो।

मैं उन्हें इस विश्वास से विमुख नहीं करना चाहती। वे ऐसा करते हैं करने दो।'

निशा ऊषा को देखते ही सलज्ज हो चल दी। उन दोनों के जीवन का यही क्रम है। वह उसे देखती है, मुस्करा कर भागने का उपक्रम करती है और वह उसे देखकर। ऐसा क्यों होता है ? द्वेष से नहीं, मीठी झिड़कियों के भय से। वे बचना चाहती हैं; परन्तु बचती नहीं। वे मिलती हैं, लज्जा की लालिमा से रञ्जित कपोलों पर बीती हुई घड़ियों की भावनाओं का भार लादे हुए, झिझकती हुई और फिर अपने अभिसार की कहानी सुनाकर इठलाती हुई चल देती हैं, मुस्करा कर।

टॅानिया ने अरुण भावनाओं का बिछाकर कावरिन् से कहा—अब सोना चाहिए !—और सरदी भी है। कोवरिन् का हाथ अपने हाथ में लेकर चलती हुई वह कह रही थी—हमारा जीवन !—उसने हँसते हुए कहा था—उद्यान, बस, केवल उद्यान के लिए ही तो बना है। हमारे चारों ओर का वातावरण बस केवल उद्यान उद्यान, उद्यान !—सेव के पेड़ों, और अन्य फल-फूल पत्तों के अतिरिक्त हम और किसीकी कल्पना भी नहीं कर सकते।......मैं किसी समय अपनी वर्तमान परिस्थितियों से उलझकर उनसे ऊब उठती हूँ !......मैं कभी-कभी अपने को परिवर्तित अवस्था में देखने की सजीव आकांक्षा में भुला देती हूँ।......मुझे स्मरण है, जब तुम हम लोगों से मिलने के लिए आया करते थे !—तब मकान सहसा मुझमें चमत्कृत उन्मत्त भावनाओं को बटोरकर, वातावरण में प्राण-सा डाल जाता था; जैसे किसीने सुसज्जित प्रकोष्ठ का आवरण हटा दिया हो।......तब मैं एक छोटी-सी लड़की थी।......परन्तु मैं समझती थी......

टॉनिया कुछ देर तक निरन्तर बोलती रही ; और उसके एक-एक शब्द में भावनाएँ सजीव मुद्रा धारण किये हुए उसके अन्तस्थल से निकल रही थीं। सहसा कोबरिन् के मस्तिष्क ने मीठी कल्पना की डोरी के सहारे आगे बढ़कर अनुभव किया, जैसे—वह विश्व के आह्लादमय उस खिलवाड़ को, सदैव चख-चख बोलती हुई नव यौवन का भार लिये हुए, जीवन की पहेली-सी, उस बाला को ग्रीष्म की उछलती हुई रजनी में प्यार करने लगा हो। ......और जैसे—उसे इन विचारों ने प्रसन्नता दी हो। जीवन की कुछ आह्लाद, और अन्यमनस्कता की घड़ियों का विचित्र सामंजस्य हृदयस्थली में बिखरा कर वह आगे बढ़ रही थी, और तब उसने गुनगुना कर गाया—मैं तुझे पागल की तरह प्यार करता हूँ !

जब वे घर पहुंचे, ईगॅर-सीमॅानाविच शय्या का परित्याग कर विश्व की स्वर्णिम विभूति को देख रहा था। कोबरिन् सोना नहीं चाहता था, वह उससे बातें करने लगा। और फिर वे बाग़ की ओर चल पड़े। ईगॅर-सीमॅानाविच हृष्ट-पुष्ट और विशाल स्कंध का कंकाल लिये हुए, प्रकृति की कला का आदर्श स्वरूप था। हाँ, उसे दमें की बीमारी हो गई थी: फिर भी वह इतनी तेज़ी के साथ चलता था !—ओह ! उसके त्वरित आवेग के साथ कौन नवयुवक चलने का साहस कर सकेगा ? उसके साथ वार्तालाप करने में आप अनुभव कीजिएगा कि उसके स्वर एवम् हाव-भाव में शीघ्रता और व्यग्रता घुली हुई है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यदि उसे एक क्षण का भी विलम्ब हो जाता, तो उसका किया-कराया सब नष्ट हो गया होता।

'भाई, तुम्हारे लिए वहाँ, एक रहस्य है !' उसकी साँस फूलने लगी थी, क्षणिक विश्राम के लिए वह रुक गया—'वह सामने, वह देखो, वहाँ

जमीन पर जहाँ कुहरा छाया है, तुम थर्मामीटर लगा कर देखोगे कि धरित्री उष्ण उच्छ्वास का आंदोलन उठा रही है......ऐसा क्यों है ?'

'मैं नहीं समझ सकता।'—कोवरिन् ने हँसते हुए कहा।

'न !......तुम हर एक चीज़ थोड़े ही जान सकते हो।...प्रत्येक विद्वान् भी प्रत्येक वस्तु के विषय में जानते होंगे—ऐसी आशा उनसे कदापि नहीं की जा सकती। और तुम तो, मेरा अनुमान है, अब भी फ़िलॉसफ़ी के चक्र में घूम रहे हो !'

'जी हाँ,.........मैं अधिकतर फ़िलॉसफ़ी ही का अध्ययन करता हूँ।'

'तुम उससे ऊबते नहीं ?'

'जी नहीं ! मैं तो उसके बिना जिवित ही नहीं रह सकता।'

'अच्छा है, परमात्मा......'—ईगॅर-सीमॅनाविच अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों पर हाथ फेरता हुआ गंभीरता-पूर्वक कहने लगा—'परमात्मा तुम्हें साफल्य प्रदान करे !......मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, सचमुच भैया, बहुत प्रसन्न हूँ......।'

और अनायास ही उसने कुछ सुना। उसकी मुखाकृति भयानक गंभीरता में परिणत हो गई। वह शीघ्रता-पूर्वक वृक्षों के झुरमुट में होकर धुँएँ के समूह में विलीन हो गया।

'यहाँ, इस घोड़े को कौन बाँध गया ?......किसने बाँधा ?'—निराशा की भावनाएँ जागृत करती हुई ध्वनि सहसा गूँज उठी—'किस चोर ने, तुम में से किसने, मेरे सेव के पेड़ से घोड़ा बाँधने का साहस किया ? मेरे प्रभु ! मैं लुट गया ! मेरा उद्यान नष्ट-भ्रष्ट हो गया ! ओह भगवन् !'

जब वह कोवरिन् के पास लौटा, उसके मुख मण्डल पर आघात, आवेग, और वेदनाओं को भार लदा था।

'इन नारकीयों के साथ तुम कैसा व्यवहार कर सकते हो?'—आवेग के उन्माद में हाथ मलते हुए वह भुनभुनाने लगा—'कल रात को, वह नीच 'सपेका' खाद की गाड़ी यहाँ लाया था, और उसी ने घोड़े को पेड़ से बाँध दिया......मूर्ख ने उसे इतना कस कर बाँध दिया, कि रस्सी की रगड़ से दो तीन जगहों की छाल तक कट गई।...ऐसे आदमी के साथ तुम कैसा व्यवहार करोगे? मैंने उसे फटकारा, तो वह गिड़गिड़ाने लगा।......भोंदू!...... कायर!..........उसने फाँसी पाने लायक काम किया है!'—और थोड़े से उद्विलित क्षणों के पश्चात्, जब नीरवता ने उसके मस्तिष्क में प्रवेश किया, वह फिर खिलखिलाकर हँसने लगा। आवेश में आकर उसने 'कोवरिन्' को हृदय से लगा लिया, और उसका मस्तक चूमकर गद्‌गद् स्वर में कहने लगा—...'भगवन्!......भगवन्!!......भगवान् तुम्हारा भला करे! ......'—उसके स्वर में स्नेह स्निग्ध कंपन था, 'तुम आ गये, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई! .... आह! सचमुच आज मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ!'

वह उसे अपने उद्यान के विभिन्न कोणों का दिग्दर्शन कराने लगा। और उस समय सूर्य अपनी समस्त प्रारम्भिक विभूतियों को बटोर कर चमकने लगा था। मई के चमकते हुई उस पहले सप्ताह ने उसके शरीर के मज्जा-तंतुओं में नव स्फूर्ति का संचार कर दिया। बाल्यकाल की मधुर स्मृतियों ने उसके मस्तिष्क-मंडल में भावनाओं की लहर उठा दी।......इसी उद्यान में किसी दिन छोटा-सा वह, खेला करता था। उसने बुड्ढे को गले से लगा लिया। और वे फिर पुराने चीनी के प्यालों में, क्रीम और बढ़िया बिस्कुटों के

साथ, चाय पीने के लिए घर की ओर चल दिये। 'कोवरिन्' को रह-रह कर अपने जीवन के सुनहले दिनों की बहुत-सी कहानियाँ घटनावशात् याद आ जाती थीं,—और वह उन्हें फिर से बटोरना भी चाहता था।

टॉनिया जागी, उसने उसके साथ कॉफी पी, और फिर अपने कमरे में जाकर अध्ययन करने लगा। लेखनी से पंक्तियों के बाद पंक्तियाँ, काली लकीरों से अङ्कित करता हुआ, वह अनवरत पढ़ते जाने की चेष्टा करता था; परन्तु उद्यान के सुरभित कुञ्जों का दृश्य बहुत-सी बीती बातों का पुष्पों-द्वारा आमन्त्रित कर, उसे कभी-कभी बीच-बीच में गुदगुदा देता था। आह! शैशव!

२

परन्तु ग्राम के प्रसन्न वातावरण में भी उसे घूमने में नहीं, अध्ययन करने में, लिखने में, और इटालियन सीखने में भी अधिक प्रसन्नता मिलती थी। उसके दैनिक क्रम में कोई भी अन्तर न पड़ने पाया था। वह घूमने जाता था; परन्तु वहाँ भी उसे सदैव पढ़ने की ही चिंता बनी रहती थी। उसे निद्रा कम आती थी—इतनी कम! पी आस्की और टानिया उसे देखकर आश्चर्य करते थे। यदि किसी दिन, दिन में वह आध घण्टे के लिए सो गया, तो फिर सारी रात वह पढ़ने में ही व्यतीत कर देता था। इतना अधिक परिश्रम करने पर भी वह सदैव स्वस्थ और प्रसन्न चित्त दिखलाई पड़ता था।

दिन भर में, जब कभी वह समय पाता, खूब बातें करता, शराब पीता,

और बहुमूल्य सिगार, भावनाओं के साथ धुएँ में उड़ा देता। प्रायः नित्यप्रति ही पड़ोस की युवतियाँ टॉनिया के पास आतीं, पियानो बजातीं, और दिन भर गाती रहती थीं। कभी-कभी एक पड़ोसी नवयुवक भी जो, वॉयलिन् बजाने में सिद्धहस्त था, वहाँ आया करता था। कोवरिन् उसे इच्छापूर्वक सुना करता था; परन्तु वह उससे बहुत शीघ्र ही ऊब भी जाता था और इतना अधिक ऊब जाता था कि वह उसे एकदम बुरा समझने लगता। उसके नेत्र अपने आप ही बन्द हो जाते और उसका मस्तक अपने आप ही नत होकर उसके स्कंध को स्पर्श करने लगता।

एक दिन सन्ध्या के समय, चाय पीने के पश्चात् वह कुछ पढ़ रहा था। बैठक में टॉनिया अपने मित्रों के साथ संगीत का अध्ययन कर रही थी। हाथ में खुली हुई किताब लिये हुए कोवरिन् उसके एक-एक अक्षर को ध्यान-पूर्वक सुन रहा था; परन्तु गीत ठेठ रूसी भाषा में होने के कारण उसकी समझ में अधिक न आ सका। उसने पुस्तक रख दी और अपनी समस्त भावनाओं को बटोरकर वह उस गायन की गति के एक-एक अङ्ग में उन्हें मिलाने लगा। एक युवती अपने बिखरे हुए विचारों की शृङ्खला को जोड़ती हुई किसी उद्यान में टहल रही थी। सहसा उसे किसी का मधुर स्वर सुनाई पड़ने लगा। स्वर इतना मधुर, इतना विचित्र था कि वह उसकी स्वरैकता और पवित्रता को भावनाओं का अवगुण्ठन उठाकर देखने के लिए वाध्य हो गई। उसने फिर अनुभव किया, जैसे—वह आवाज़ विश्व के वायुमण्डल में विलीन होकर आकाश की ओर उड़ गई। कोवरिन् की पलकें क्रमशः नीची हो गईं। वह उठा और उस बड़े-से प्रकोष्ठ में इधर-उधर चक्कर काटने लगा। जब 'वायलिन्' की ध्वनि का निरत अवरोह होना आरम्भ हो गया।

और वह अपनी शेष श्वास समाप्त कर कुछ काल के लिए मौन हो गया, तब उसने टॉनिया को साथ लिया और कमरे की एक खिड़की पर बैठ गया।

'प्रातःकाल की प्रथम रश्मि आज मेरे मस्तिष्क में विचारों की एक नवीन धारा सहेज कर रख गई है'—वह कहने लगा—'मैं आज सबेरे से ही उस पर विचार कर रहा हूँ। ध्यान आ रहा है, मैंने कहीं उसे पढ़ा अथवा सुना अवश्य है। हाँ, इतना तो मैं कह सकता हूँ कि वह अधिक स्पष्ट नहीं है।......आज से कोई हज़ार वर्ष पूर्व एक पुरोहित था—काले आवरण में ढका हुआ, जङ्गली देशों में, यहीं कहीं, 'अरब' अथवा 'सीरिया' के पास घूमा करता था......। कुछ मील दूर पर एक मछुए ने झील के तल पर एक दूसरा काला पुरोहित घूमते हुए देखा था। वह केवल छाया-मात्र था।—तुम अपने हृदय से सन्देहात्मक विचारों को निकाल डालो; कहानियों में उनका कोई स्थान नहीं होता।—पहली छाया से, एक दिन लोगों ने देखा, एक दूसरी छाया उत्पन्न हो रही है; और क्रमशः दूसरी से तीसरी, फिर इसी तरह यत्र-तत्र-सर्वत्र काला पुरोहित छाया की निर्मल आभा में दिखलाई पड़ने लगा। एक ही समय में वह अफ्रीका, स्पेन, भारतवर्ष और सुदूर उत्तर में भी दिखलाई पड़ता था। और अन्त में वह छाया पृथ्वी के वायु-मण्डल की सीमा से प्रकट हुई; परन्तु वह कभी इस रूप में प्रकट नहीं हुई, जिससे कि वह विलीन हो सकती हो। आज भी सम्भव है कि वह मङ्गल अथवा अन्य किसी ग्रह में दृष्टिगोचर होता हो। तात्पर्य यह है कि कहानी की मूल-तत्व इस भविष्यवाणी पर निर्भर है कि ठीक एक हज़ार वर्ष बाद 'काला पुरोहित' किसी निर्जन वन में उपस्थित होगा।......वह छाया, एक बार फिर विश्व के वायुमण्डल में

अवतरित होकर मनुष्यों को दर्शन देगी। प्रतीत होता है कि अब एक हजार वर्ष की अवधि समाप्तप्राय है......। दन्त-कथा के अनुसार हमें आज-कल में ही काला पुरोहित की छाया के दर्शन करने की आशा करनी चाहिए।

'अत्यन्त आश्चर्य-जनक कथा है, यह!'—टॉनिया ने इस दन्त-कथा को सुनकर एक विचित्र भाव-मुद्रा धारण की।

'परन्तु सबसे अधिक आश्चर्यजनक तो यह बात है'—कोवरिन ने हँसते हुए कहा—कि यह कथा सहसा मेरे मस्तिष्कमंडल में किस तरह प्रवेश कर गई। मैंने इसे कहीं पढ़ा है? सुना है?—अथवा मैंने काले पुरोहित को स्वप्न में देखा है—कुछ भी नहीं कह सकता। हाँ, यह कथा मुझे अच्छी अवश्य लगती है। आज प्रायः दिन भर मैं इसी विषय में चिन्तन करता रहा हूं।'

जब टानिया अपने परिचितों से मिलने चली गई, वह कमरे में चक्कर काटने लगा। और फिर वह सुरभित उद्यान में कुसुमकुंजों के समीप टहल कर अपने विचारों के धारा-प्रवाह में परिवर्तन लाने का उपक्रम करने लगा। सूर्य अपनी समस्त शक्तियों को खोकर, तब निस्तेज हो चुका था। सींचे हुए फूलों के मनोहर कुञ्ज, भीनी और मतवाली सुगंध यत्रतत्र मतवाले से लुटा रहे थे। मकान में गायन आरंभ हो चुका था। 'वॉयलिन' के तारों के अन्दर से, उसने अनुभव किया, जैसे मानव-स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रहा हो। सहसा उस दन्त-कथा की, कुछ समय के लिए भूली हुई बातें, फिर स्मरण-शक्ति की सहायता से प्रज्ज्वलित हो उसे यह जानने के लिए उत्कंठित करने लगीं कि उसने यह कथा सुनी कहाँ थी।

नदी की और जाते हुए पथ पर, वह बढ़ता ही चला गया। प्रकृति के

रंगमञ्च पर उस समय सूर्यास्त का अंतिम दृश्य था। भावनाओं की लहर में वह नदी में उतर पड़ा और सचमुच राजहंसों को भयावह अवस्था में भागते देखकर उसे एक विचित्र प्रसन्नता हुई। नदी कम गहरी थी; अतएव वह उसे ऐसे ही पार कर गया। विचारों का अंधड़ केवल उसके मस्तिष्क में ही नहीं, समस्त शरीर में भयंकर झंझावात उठा रहा था। मर्माहत कोवरिन् उसी की थपेड़ में नदी के किनारे को उस सड़क पर न मालूम कहाँ तक चला गया। दूर तक मनुष्य की छाया तक भी न दिखाई पड़ती थी; और ऐसा प्रतीत होता था कि वह पथ पश्चिम के उस अपरिचित प्रदेश तक चला गया है, जहाँ सूर्यास्त हो चुका है? परन्तु उसका विस्तृत—चमत्कृत अवशेष अब तक विद्यमान है।

कल्पना के विशाल प्रदेश में उसकी भावनाएँ विचरण करती हुई सोच रही थीं—कितना शान्ति-प्रद एवम् सुन्दर स्थान है यह! ऐसा प्रतीत होता है, जैसे—समस्त विश्व, आज से टकटकी लगाकर मेरी ओर देखता हुआ सोच रहा है कि यह इसका रहस्योद्घाटन करेंगे और वह इसकी प्रतीक्षा में खड़ा है।

अनाज के लम्बे-चौड़े खेतों में सायंकाल को सनसनाती हुई वायु धूम मचा रही थी। हवा का हलका-सा झोंका आया, और उसके मस्तक को स्पर्श करता हुआ, विनम्र हो धीरे-से बह गया। एक क्षण के पश्चात् ही सहसा हवा फिर चली—उसे हम अंधड़ क्यों न कहें? अशोक के शोकहीन वृक्षों की ओट से सहसा एक मर्मान्तक स्वर सुनाई पड़ने लगा। आश्चर्य की प्रत्यक्ष भावमुद्रा ने कोवरिन को खड़ा होने का आदेश दिया। और वह खड़ा हो गया। सामुद्रिक झंझावात में उत्ताल लहरों के गगनचुम्बी स्तम्भ

की भाँति वहाँ भी एक काला ऊँचा-सा स्तूप के समान वायु का, नव-निर्मित स्तम्भ आकाश में खडा हो गया। अपलक नेत्रों से उसने देखा कि पलक मारते ही वहाँ उससे थोडी ही दूर पर काला पुरोहित खड़ा था। उसने उसकी ओर देखा, औ फिर मुस्करा दिया; परन्तु उसमें पीड़ा छिपी थी। उसका मुँह पीला-सा, पतला-सा था। पानी के बुलबुले की भांति कुछ ही क्षणों में वह विलीन हो गया—धुएँ में, आकाश में आश्चर्य-सा।

'आखिर को वह दन्त-कथा सत्य ही ठहरी न !'—कोवरिन् ने कल्पना से कहा।

उसकी इच्छा थी कि वह इस घटना को रहस्य के गर्भ में रक्खे। उसने स्पष्ट रूप से काले पुरोहित को देखा था। वह इससे सन्तुष्ट भी था—काले-काले आवरण में काले पुरोहित की आँखें नाक, मुँह—उसने सभी कुछ तो देखा था। सचमुच उसे प्रसन्नता का आभास मिल रहा था। उछलते हुए हृदय को लेकर वह घर की ओर चल दिया।

मार्ग में, उद्यानों में, वाटिकाओं में उसने अपने बहुत-से परिचितों को घूमते हुए देखा। वे सब शान्तिपूर्वक टहल रहे थे। घर पर संगीत उसी क्रम से चल रहा था। तो, केवल उसी ने काले पुरोहित को देखा? उसकी इच्छा हुई कि वह टॉनिया और ईगॅर-सीमॉनाविच, दोनों ही से सब कुछ कह दे, जो कुछ उसने पार्थिव नेत्रों से थोड़ी देर पहले देखा था; परन्तु फिर उसने न कहा। क्यों न कहा?—कौन जाने......हाँ, उस दिन वह हँसा, खूब जोर से हँसा, नाचा—खूब नाचा, उस दिन उसने कई सुन्दर गीत भी सुनाये—वह उस दिन बहुत ही प्रसन्न था। टॉनिया और उसके

मित्रों ने अनुभव किया, उस दिन उसकी प्रसन्नता में विचित्रता की मात्रा अधिक थी।

३

सायं भोजन किलकारी के अंक में थपेड़े खाकर सुख की नींद में सो गया; और सब लोग अपने-अपने घर चले गये। कोवरिन् उठा, और अपने कमरे में जाकर पर्य्यंक पर पड़े हुए सुकोमल प्रस्तरण पर लेट कर काले पुरोहित की कल्पना......। वह चाहता था कि उसकी कल्पना करे—और वैसे ही टॉनिया ने प्रकोष्ठ में प्रवेश किया।

'लो, देखो!'—उसने मानसिक प्रसन्नता को अपने हाव-भावों में बिखेर कर कहा—'पापा के यह लेख......। वे बहुत सुन्दर लिख लेते हैं!'

'खूब!'—ईगॅर-सिमॅानाविच ने मुस्कराते हुए कमरे में प्रवेश किया—'उसकी बातों पर ध्यान न दो।......तुम्हें उनमें मूर्खतापूर्ण भावनाओं की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में भटकते हुए अक्षरों के समूह की अपेक्षा और कुछ न मिलेगा।'

'मैं तो समझती हूं कि वास्तव में यह सब लेख पठनीय एवं माननीय हैं।'—टॉनिया ने गम्भीरता-पूर्वक कहा—'कोवरिन्, तुम इन्हें अवश्य पढ़ डालो। वृक्ष-विज्ञान पर पापा बहुत कुछ लिख सकते हैं......तुम इन्हें और लिखने के लिए बाध्य करो।'

ईगॅर-सिमॅानाविच के लज्जायुक्त अट्टहास से प्रकोष्ठ गूँज उठा। नये

लेखक की प्रशंसित भावनाओं की उत्ताल तरंगों में बहती हुई उसकी आत्मा विशेष आनन्द का अनुभव करने लगी। उसने हकलाते हुए स्वर में कहा—यदि तुम अपना समय नष्ट कर उन्हें पढ़ना ही चाहते हो, तो पहले उन्हें पढ़ो।—काँपते हुए हाथों से पत्रिका के पृष्ठ उलटते हुए उसने अपना लेख उसके सामने रख दिया। और ऐसे ही उसने तीन-चार लेख और भी खोल कर रख दिये।—'पहले इन्हें ध्यान-पूर्वक पढ़ जाने के पश्चात् ही तुम अन्यान्य लेखों को भली-भांति समझ सकोगे।......परन्तु...यह सब मूर्खता-पूर्ण है।......व्यर्थ ही में समय नष्ट होगा। और यह समय तो सोने का है।

टॉनिया चली गयी। ईगर-सिमानाविच सोफे के एक कोने पर बैठ गया। एक लम्बी साँस ने उसके अन्तर की प्रतिध्वनियों को बटोर कर प्रकोष्ठ की दीवारों के मर्मान्तक कम्पन में कुछ क्षणों के लिए मिला दिया।

'आह! भैया मेरे......'—उसने अनेक क्षणों के संचित मौन को, भावनाओं की तरंग में, एक ही क्षण में बिखेर कर कहा—'मैं लेख लिखता हूँ, लोग पढ़ते हैं मेरा विज्ञापन होता है। मैं कभी-कभी उनके कारण पदक भी प्राप्त करता हूं।......पिश्रासकी, लोग कहते हैं, पिश्रासकी के उद्यान के सेव बड़े-बड़े होते हैं।—इतने बड़े!......इतने, जितना कि तुम्हारा सिर।......परन्तु इन सब बातों से होता क्या है? उद्यान—भले ही वे सुन्दर हों, आदर्श हों। आधुनिक रूस के आधुनिक कृषि-विज्ञान को भले ही इनमें मौलिकता और नवीनता का आभास मिल रहा हो।......परन्तु इन सब का होगा क्या? आखिर इनका परिणाम......?'

'यह प्रश्न तो सुलभता-पूर्वक हल हो सकता है।'

'मेरे कहने का यह आशय कदापि नहीं। मैं तो कहता हूँ कि जब मैं जीवन-यान को समस्त पोत-रज्जुओं को असम्बद्ध कर प्रकृति के नेपथ्य में अनन्त काल के लिए विलीन हो जाऊँगा, तब इन सब का क्या होगा ? .. वर्तमान स्थिति को देखते हुए तो मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे बिना यह उद्यान एक महीना भी फलित एवं पल्लवित नहीं रह सकता। इसका कारण ?......इसका कारण तो यह है कि मैं इसे प्यार करता हूँ। इतना प्यार !......इतना !—सच कहता हूँ, अपने से भी अधिक ! तुम मुझे देखते हो न !—दिवाकर की ज्योतिमयी आभा की प्रथम किरण के दर्शन मुझे अपने उद्यान में होते हैं; और संध्या की धूमिलता जब मेरे नेत्रों को काले आवरण से ढँक देती है, तभी, विवश होकर, इस अट्टालिका में आलोकित दीपकों के प्रकाश में, इस आडम्बरमय विश्व के व्यापार की छाया का अवलोकन मुझे करना पड़ता है।......तुम देखते हो, मैं स्वयं ही, अपने हाथों से पौधे लगाता हूँ, मैं उन्हीं के लिए जीता हूँ।......जब मेरा कोई सहकारी मेरी सहायता करने आता है, मैं खीझ उठता हूं, मुझे उससे घृणा हो जाती है। जब मैं अपने किसी मित्र से मिलने चला जाता हूं, मेरा हृदय अपने उद्यान के नव-पल्लवों में ही उलझा रहता है। मैं अहर्निश अपनी इस नवोढ़ा प्रणयिनी के अलकपाश में आबद्ध रहता हूँ।......मान लो, यदि कल ही ईश्वरीय-दूत मुझे नन्दन-निकुञ्ज के मनोहर पारिजातों की सुन्दरता का ठेकेदार बनाकर ले जायँ ?......तब कौन यहाँ मेरे स्थान की पूर्ति करेगा ?—यह प्रधान माली ? ये कुली लोग ?—हिं:—......मैं तुमसे सच कहता हूं, मेरे भाई, मैं इन शीघ्रगामी खरगोशों से, 'झाँय-झाँय करते हुए झींगुरों से, वृक्षों के सर्वश्रेष्ठ शत्रु पाले से भी इतना नहीं

घबराता—जितना इन अनाड़ियों से !—ये लोग एक क्षण में केवल एक ही क्षण में, मेरे समस्त जीवन के अथक परिश्रम को, मेरे उद्यान की भू-लुंठित-मिट्टी में मिला देंगे। मुझे यह विश्वास को अन्तरात्मा की भाँति सत्य प्रतीत होता है।'

'परन्तु टानिया !'—कोवरिन् ने मुस्कराते हुए कहा—'मेरा विश्वास है, वह किसी खरगोश अथवा झींगुर की भाँति तुम्हारे उद्यान को नष्ट न कर डालेगी।......वह इससे प्रेम करती है, और जहाँ तक मेरा विश्वास है, वह इस काम को समझती भी है।'

'हाँ, टानिया इस काम को अवश्य कर सकती है। स्वर्ग के सोपानों पर चढ़ते समय यदि मैं यह सुन लूँगा, कि मेरी टानिया मेरे पश्चात् इसकी रक्षा करेगी, बस, फिर उसके पश्चात् मेरी समस्त उद्वेलित आकांक्षाएँ शान्ति के हिम-कणों में विलीन होकर मुझे तृप्त कर देंगी।......परन्तु परमात्मा न करे यदि उसने किसी से विवाह कर लिया !'—ईगर-सिमानाविच यह कहकर भयभीत नेत्रों से कोवरिन् की ओर देखने लगा।—बस मुझे केवल इस एक चिन्ता ने विक्षिप्त बना डाला है।......वह विवाह करेगी, फिर उसके बच्चे होंगे; बहुत से रोते, गाते, हँसते, खेलते, कूदते—तब फिर उसे इतना समय कहाँ से मिल सकेगा कि वह मेरी आत्मा के रक्त से सिञ्चित इस उद्यान की सेवा कर सके? मुझे सबसे बड़ा भय तो इस बात का है, कि यदि उसने किसी मितव्ययी पुरुष से विवाह किया, तो वह इसे किराये पर उठा देगा, और फिर...फिर...फिर मेरे समस्त जीवन की, मेरी हृदय की सारी आशाएँ और भावनाएँ पद-दलित होकर इस निखिल विश्व की करोड़ों अनबूझी आत्माओं की आवाज के साथ-साथ समाधि के

अन्तस्तल में घुमड़कर, टकराकर रोकर, बुद-बुदाकर सदैव के लिए मौन हो जाएँगी।'

ईगर-सिमानाविच ने निराशा के निःश्वास में अपनी समस्त भावनाओं को मिला दिया। भावनाओं की बाढ़ में वह कुछ क्षणों के लिए, स्तब्ध होकर अपनी आत्मा से बातें करने लगा।

'शायद तुम इसे मेरी स्वार्थपरता समझो; परन्तु मैं टॉनिया का विवाह नहीं करना चाहता। मुझे भय है! तुमने उसे देखा है न?—अरे, वही मसखरा, जो कभी-कभी यहाँ आकर वॅायलिन के तारों को झनझनाया करता है।—मुझे यह विश्वास है कि टॉनिया कभी भी उसके साथ विवाह करना पसन्द न करेगी; फिर भी, तुमसे सच कहता हूँ भैया, मैं उसे देखना पसन्द नहीं करता।... मैं उससे घृणा करता हूँ।'

ईगॅर-सिमानाविच आवेश में खड़ा होकर, कमरे में चक्कर काटने लगा। विषय की गम्भीरता ने उसे गम्भीर कर दिया था। उसकी भाव-मुद्रा स्पष्ट बतला रही थी कि वह कोई विशेष गम्भीर बात कहना चाहता है; परन्तु उसे आरम्भ करने का सूत्र अभी उससे हाथ नहीं लगा।

'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। सच कहता हूँ, बेटे, मैं तुम्हें प्यार करता हूं।'—जेब में हाथ डालते हुए, नत-मस्तक वह कहता ही चला जा रहा था—मैं अपना हृदय चीर कर तुम्हें नहीं दिखला सकता, तुम इस मानव-विभूति के स्वर्ण-सिंहासन पर मेरे देवता की भाँति प्रतिष्ठित हो। मैं तुमसे सच कहता हूँ, मैं तुमसे कभी भी कोई बात नहीं छिपाता; सच कह दूं।—यदि टॉनिया का विवाह तुम्हारे साथ हो जाय, तो मुझे अतीव प्रसन्नता होगी। फिर कोई भी चिन्ता मुझे न सता सकेगी। फिर मैं निश्चिन्त होकर

मर सकूँगा। तुम विद्वान हो, चतुर हो, हृदयवान हो, और तुम मेरी गाढ़ी कमाई को, मेरी जागृत समाधि को, मेरे अपने प्रतिबिम्ब को, मेरे उद्यान को, नष्ट होने से बचा लोगे। मैं तुम्हें अपने लड़के की तरह प्यार करता हूं। मुझे तुम्हारे ऊपर गर्व है।......और यदि टॉनिया को विवाहित रूप में, मैं देखना पसन्द करूँगा, तो वह केवल तुम्हारे साथ ही।'

कोवरिन् मुस्कराया। ईगॅर-सिमॉनाविच द्वार खोलते हुए बाहर निकला, और फिर, अनायास ही पलट कर उसने उससे कहा—

'और फिर जब तुम्हारे और टानिया के एक लड़का होगा, तो मैं उसे वृक्ष-विज्ञान का विशेषज्ञ बनाऊँगा।......परन्तु, यह सब तो अभी कल्पना के उड़ते हुए डोरे हैं।'—फिर वह बिदा लेकर चल दिया।

कोवरिन् एकान्त में लेटे-लेटे ईगॅगर-सिमॉनाविच के लेखों को ध्यान-पूर्वक पढ़ने लगा; परन्तु उसका मन उन पृष्ठों के काले-काले अक्षरों से उस समय दूर भाग रहा था। उन लेखों के विषय में उसकी धारणा अच्छी थी; फिर भी वह उन्हें पढ़ना नहीं चाहता था—और वह उन्हें पढ़े भी कैसे?—उसका मन उनमें लगता ही न था।

उसने उन्हें उठाकर अलग रख दिया। टॉनिया—वह सोचने लगा—टॉनिया अपने पिता के उन लेखों की कितनी प्रशंसा करती है! टॉनिया, वह सोच रहा था, छोटी-सी, दुबली-पतली, पीतवर्णा, उसकी हँसलियों को कोई दूर से भी देख सकता था।......उसकी बड़ी-बड़ी काली-काली आँखें-जैसे वे सर्वदा ही किसी कुछ को खोजती रहती हों।...बड़ी बातूनी, बहुंस वाली, बड़ी, भीरु, भोली-सी, चतुर नवयुवती—और ईगॅर-सिमाँनाविच?... त्वरितगामी, बुड्ढा चतुर माली!

वह फिर पढ़ने बैठा ; परन्तु फिर भी पढ़ न सका। उसने पुस्तकें एक ओर फेंक-सी दीं।...और...और, अब, काला-पुरोहित !—ओह ! उस दिन वह कितना प्रसन्न था !—नाचा भी था, गाया भी था, और प्रसन्नता शैशव की लिकारियों में मिली हुई-सी, उसे, उस दिन नव स्फूर्ति का आसव पिला रही थी। कालापुरोहित !—तो क्या केवल उसने ही उसे देखा था ? अद्भुत, विचित्र, मानव-हृदय की विचार-वीथि की एक पहेलीसी–काला पुरोहित !—वह केवल उसकी विचित्र कल्पना की छाया मात्र-सा ही था। यदि उसे केवल उसने, अकेले नहीं देखा था, तो वह अवश्य ही उसके काल्पनिकता-पूर्ण मस्तिष्क का विकार-मात्र अथवा उसका प्रतिबिम्ब था। विकार मात्र, और कुछ भी नहीं—काला पुरोहित—कुछ भी नहीं, विकार-मात्र ! ओह ! उसके विचारों ने उसे डरा दिया ; परन्तु वह अधिक देर तक उनसे डरा भी नहीं।

वह सोफे पर बैठ गया। कुछ क्षणों के पहले उसके अनियंत्रित मन-द्वारा अधिक्षिप्त हुई पुस्तकें—उसने उन्हें उठा लिया। वह फिर पढ़ने का उपक्रम करने लगा। वह उस समय प्रसन्न था ; उसके हृदय में उस समय अकथनीय प्रसन्नता का प्रादुर्भाव हो उठा। ऐसा क्यों हुआ ? वह स्वयं नहीं जानता। उठा, कमरे में दो-तीन चक्कर काटे, और फिर बैठ गया। सिर को दोनों हाथों के बीच में रखकर बैठा हुआ वह कल्पना को, उधड़ी हुई मानव-हृदय की व्यथाओं को, डोरे से सीने लगा। सहसा फिर उठा, और अपने कपड़े उतार डाले ; फिर शय्या पर लेट गया।

परन्तु वह सो न सका। उसने पढ़ना चाहा ; परन्तु पढ़ भी न सका। और सारी रात्रि इसी प्रकार मूर्खता की पहेलियों को सुलझाने में व्यतीत हो

गई। तब उसने सुना, ईगॅर-सिमॉनाविच अपने काम पर जाने की तैयारियाँ कर रहा है।

'नौकर! शराब!'

शराब आई। उसने पी ली। फिर नींद आई, सो गया।

४

उनींदी घड़ियों की थाली में झुँझलाहट और असद्व्यवहारों के तोड़े सजाकर, कभी-कभी, कलह, टॉनियाँ और ईगॅरसिमॉनाविच के बीच में क्षणिक अशान्ति उपस्थित कर जाता करती थी। उस दिन उषा ने आँख खोलते ही देखा—वे दोनों किसी सूत्र को लेकर कलह कर चुके थे, और रोती हुई टॉनिया आन्तरिक वेदना को हिचकी बँधे शब्दों में निकाल कर बिखेरती हुई अपने कमरे में चली गई। खट!......प्रकोष्ठ के कपाट अन्दर से बन्द हो गये और वे उस दिन उस समय भी नहीं खुले, जब कि चीनी के पात्र पारस्परिक मिलन की प्रतीक्षा में हृदय से प्रसन्नता और आशा की उष्ण उच्छ्वास निकालते हुए कह रहे थे—आओ, मैं तुम्हारे अधरों से मिलने की प्रतीक्षा में ही रह गया; परन्तु कपाट न खुले—न खुले।

न्याय के पात्र में दण्ड-विधान का आसव ढालकर ईगॅर-सिमॉनाविच ने उस दिन निश्चय किया था कि वह उसके हठ को तोड़ने का हठ न करेगा; परन्तु पिता के हृदय ने उसे बाध्य कर दिया कि कठोरता को वह अब विसर्जित कर दे। ममता की कोमल भावनाओं ने उसके हृदय से कहा—तुम्हीं बोलो, मेरी बिटिया तो भूखी पड़ी है, मैं कैसे भोजन कर लूँ?

और जर्जर हाथों ने कोमलता-पूर्वक थपथपाया—टानिया ! बेटी !!

और कपाट के रंध्रों को बेधती हुई करुण पुकार आई—मुझे अकेली ही रहने दीजिए। मैं प्रार्थना करती हूँ।

पिता-पुत्री के इस गार्हस्थ्य-द्वन्द्व ने उस दिन घर में सभी को व्यथित कर दिया था। कोवरिन् अपने अध्ययन में लीन था; परन्तु उसे भी इसके कारण बड़ी उलझन रही। अन्त में उसे आना ही पड़ा—छिः—टॉनिया। बुद्धिमान होकर भी तुम...।...छिः लज्जास्पद !...खोलो, खोलो !!

अश्रु के प्रशान्त सागर में अपने मुख-मण्डल को डुबोकर वह आई—

'तुम नहीं जानते एन्ड्री !—उन्होंने आज मुझे बहुत दुःख दिया है।—आन्तरिक वेदना, आह ! असहनीय।......मैंने उनसे एक शब्द भी नहीं कहा।......

अविरल बहते हुए आँसुओं में उसकी एक-एक आन्तरिक भावना रो रही थी। वह फिर कहने लगी—मैं तुमसे सच कहती हूँ, एन्ड्री, मैंने उनसे कुछ भी नहीं कहा था।...केवल...केवल इतना ही कहा कि उद्यान में अब इतने मज़दूरों की आवश्यकता नहीं।...वे लोग व्यर्थ ही में पैसा पा रहे हैं—तुमसे सच कहती हूँ, वे कुछ भी काम नहीं करते। बस, बस, मैंने इतना ही कहा था और वे अनायास ही गरज उठे।......मुझे कहनी-नकहनी सब कुछ सुना डालीं।......आह ! उन्होंने मेरी इतनी अवहेलना ! ......मेरा इतना अपमान !!......'

'खैर, होगा ! आखिर वह तुम्हारे पिता हैं।......तुम इतना रो चुकीं, वे इतना पश्चाताप कर चुके !......हो गया जो होना था। पिता के देव-तुल्य पद पर बैठकर मनुष्य कभी-कभी अपनी संतान को फटकार भी बता

देता है......और, इससे तुम्हारा किसी प्रकार भी अपमान नहीं हुआ।......और, वे ही तो तुम्हें इतना प्यार भी करते हैं !......देखो न !'

'मेरे इतने बड़े जीवन-क्षेत्र में, उन्होंने अबतक केवल वेदना, झिड़की, और सिसकियों का ही भार रक्खा है। वे मुझे अपदार्थ और हेय समझते हैं।......यही मुझे नितान्त कष्ट पहुँचाता है।......खैर, होगा !—मैंने भी अब यही निश्चय किया है कि कल जाकर 'टेलिग्राफ़-ऑपरेटर' बन जाऊँ। कुछ दिन अध्यन करना होगा, और फिर नौकरी मिल जायगी। बस......'

'होगा !......अब छोड़ो न, इन बातों को।......भइ, तुम दोनों ही बड़े चिड़चिड़े स्वभाव के हो। तुम्हें मानना ही पड़ेगा, अपराध तुम दोनों ही का है।...फिर...फिर यह सब क्यों ?'

विनम्रता को आश्वास और दृढ़ता की पिटारी में रखकर वह उसे शान्ति-उपहार देना चाहता था ; परन्तु वह किसी प्रकार भी शान्त न हो रही थी। उल्कोद्भव मनस्ताप उसके हृदय को उल्मुक की भाँति जला रहा था।—कोवरिन् उसे देखकर विचलित हो उठा—आह ! टानिया के जीवन में वेदनाओं का कितना वेग है।......उसे जीवन-भर, हाँ, समस्त जीवनकी प्राय: सभी उछलती हुई घड़ियों में, झिड़कियों के वातावरण में ही रहना पड़ेगा।—उसे कोई भी प्यार करने वाला नहीं ?—वह सोच रहा था—बचपन में ही वह तो अपनी माता की स्वर्गीय गोद से उतार लिया गया था, और बचपन में ही तो कठोरकाल ने झटका देकर उसके मस्तक से पिता का स्नेह-पूर्ण हाथ भी हटा दिया था !—तब इसी टानिया के पिता ने ही उसे प्यार से अपनी गोद में बिठा कर पुकारा था—'बेटा !'—और यही टानिया, तब

बिलकुल छोटी-सी प्रेम से उसका हाथ पकड़कर कहती थी—'आओ न! एन्ड्री चलो उद्यान में तितलियों के साथ खेलें।' वह, फिर, उसी में सब कुछ भूल गया था—ममत्व के स्वर्ग में देवपुत्रों-सा पलकर।......वह अनुभव कर रहा था कि सदैव फ़िलासफ़ी की उलझी हुई ग्रन्थियों में ही उलझा रहने वाला उसका दार्शनिक मस्तिष्क, उस पीली-सी दुबली टानिया के लिए, अपने मज्जा-तंतु-जाल में प्रेम और परिणय की तीव्र धारा सदैव बहाता ही रहता है। वह उसे बड़ी अच्छी लगती थी।

उसकी बिखरी हुई उड़ती हुई अलकों ने, उस समय उसे रिझा दिया था। उसने उसके कोमल कर को अपने हाथों में लेकर प्रेम से दबा दिया। ...और...फिर, धीरे-धीरे, उसकी उमड़ती हुई अश्रुगङ्गा एक दम सूख गई; परन्तु वह अब भी अपने पिता की निन्दा उससे कर रही थी। उसने उससे दयनीय-इठलाहट के साथ कहा—मुझे इस संताप से तुम मुक्त नहीं कर सकते, एन्ड्री?...मुझे बचा लो!—क्रमशः उसके मुख-मण्डल पर मुस्कराहट इठलाने लगी और फिर वह हँस पड़ी—बड़े ज़ोर से—अपनी उस दिन की मूर्खता पर।

भूत और वर्तमान के क्षणों में थोड़ा-सा भविष्य का अन्तर देकर जब वह उद्यान में पहुँचा, उसने देखा—टानिया और ईगॅरसिमॉनविच साथ-साथ, टहलते हुए, बातें कर रहे थे। उनके हाथों में जौ की रोटियाँ थीं, नमक था, वे उन्हें स्वाद से खा रहे थे—सचमुच उस समय वे दोनों ही बहुत भूखे थे।

कोवरिन् हँस पड़ा।

५

उद्यान में पड़ी हुई एक तिपाई पर बैठकर वह अपने मनमें प्रसन्नता प्रादुर्भूत कर रहा था—वह उस दिन शान्ति-पथ का प्रदर्शक बना था, इसीसे। उसने देखा—गाड़ियाँ आईं, अतिथि आये, वाद्य स्वरारोह में झनकार कर उठा, और किलकारियाँ किलककर वायु में विद्युत्-सी विलीन होने लगीं।...और फिर...काला पुरोहित !—उसने बहुत दिनों से उसे नहीं देखा था। वह सोचने लगा—वह विचित्र माया, आखिर विलीन कहाँ हो गई ?

दन्त-कथा, उस दिन खेत में उस काली छाया के प्रथम दर्शन !—इन दोनों ने एक बार उसे विचलित कर दिया।......सेव के पेड़ों की झुरमुट से खरखराहट की ध्वनि ने उसे पीछे की ओर घुमा कर दिखाया—काले आवरण में काला पुरोहित !—श्वेत-केशों की लम्बी जटा और कपाल पर गम्भीर रेखाओं से आच्छादित उसका खुला हुआ मस्तक, नंगे पैर—भिखारी-सा। मृत-व्यक्तियों-सा उसका अवर्ण मुख-मण्डल, थोड़े-से गहरे काले धब्बे अपनी कालिमा में छिपाये हुए वह क्रमशः आगे बढ़ा। बिना किसी प्रकार का स्वरोत्पात मचाए हुए—काला-पुरोहित। कोवरिन् ने ध्यान-पूर्वक देखा, काला पुरोहित उसके सम्मुख मुस्कराता हुआ खड़ा था। वे दोनों एक मिनट तक, चुपचाप, एक दूसरे की ओर देखते रहे। काला पुरोहित उसकी ओर कारुणिक दृष्टि से ताकता हुआ चुपचाप खड़ा था, उसके मुख पर थोड़ी-सी धुँधली भावनाओं की रेखाएँ थीं। कोवरिन् उसे साश्चर्य देख रहा था।

'परन्तु तुम तो केवल छाया मात्र हो !'—कोवरिन् ने कहा—'इस समय तुम यहाँ कैसे आये ?... ..दन्त-कथा में तो ऐसा नहीं है।'

'वह सब कुछ एक ही वस्तु है।'—काले पुरोहित ने तिपाई पर उसके सन्निकट बैठते हुए सज्जनता-पूर्वक कहा—'वह दन्त कथा, यह छाया—सब कुछ, तुम्हारी प्रगतिशील कल्पना के खिलवाड़ हैं।......मैं तो भूत हूँ !'

'तो इसका आशय यह है कि तुम कहीं हो ही नहीं ?—कोवरिन् ने कहा।

'तुम जो भी समझो।'—काले पुरोहित ने धीरे से मुस्करा कर कहा—'मैं तो तुम्हारी कल्पना के धवल-उज्ज्वल प्रासाद में निवास करता हूँ, और वह प्रकृति का एक विभाग है। इसीलिए मैं लीलामय की इस अनुपम प्रकृति का भी निवासी हूँ।'

'तुम बड़े चतुर हो। तुम्हारा तपोज्ज्वल मुख देख कर मेरी यह धारणा-सी हो गई है कि तुम इस ब्रह्माण्ड में एक सहस्र वर्षों से पूर्व भी निवास करते थे।......पहले मैं यह नहीं समझता था कि मेरी कल्पना कभी इतने मनोरञ्जक दृश्य उपस्थित कर सकती है !......हाँ, यह बताओ कि तुम मुझ पर इतनी करुणा क्यों रखते हो ? क्या तुम मुझसे वास्तव में अधिक प्रसन्न हो ?'।

'हाँ !—और इसका एक-मात्र कारण यह है कि तुम मर्त्यलोक के उन बहुत थोड़े-से प्राणियों में से एक हो, जिन्हें स्वयं परमात्मा ने ही अनुकम्पा कर, धरित्री का उद्धार करने के लिए भेजा है। तुम अनियमित सत्य का कार्य सम्पादन करते हो। तुम्हारे विचार, तुम्हारी धारणाएँ, तुम्हारा आश्चर्यजनक विज्ञान—सभी कुछ तो दैवी-छाप से मुद्रित हैं—वे सत्य और सौदन्दर्य की दैवी सम्पत्ति हैं—जो वास्तव में अनादि है, अनन्त है।'

'सत्य-अनादि !'......तो क्या तुम्हारा यह विचार है कि जीवन

यदि अनन्त होता, तो हमें उस अनादि की आवश्यकता पड़ती, जो कि सत्य है ?

'हाँ, जीवन अनादि है।'

'तुम्हें विश्वास है कि मनुष्य अमर है ?'

'हाँ, निश्चय ही ! तुम्हारे लिए, समस्त मानव-जाति के लिए, इस विश्व में एक अकल्पित सुन्दर भविष्य का विशाल प्रासाद विद्यमान है; और मृत्यु के लोक में जितनी ही शीघ्रता-पूर्वक तुम्हारे ऐसे मनुष्य उत्पन्न होंगे वह सुन्दर भविष्य उतना ही तुम्हारे निकट आता चला जायगा। तुम्हारे ऐसे आचार्यों के बिना, जो स्वतंत्र-रूप से अपने अनुभवों पर जीवन व्यतीत करते हैं, मनुष्यता का कोई भी मूल्य नहीं। प्राकृतिक नियमों के अनुसार इसे अपने सांसारिक इतिहास का अन्तिम पृष्ठ लिखने तक के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।......तुम कितने ही सहस्र वर्षों से सत्य के साम्राज्य में मिल जाने की त्वरित चेष्टा कर रहे हो—और यही तुम्हारी सबसे बड़ी सेवा है। तुम्हारे अन्तर में उस सत्-चित्-आनन्द का वह अमोघ आशीर्वाद विद्यमान है, जो मनुष्यों के अपने व्यक्तित्व पर निर्भर था।'

उत्सुकता-पूर्वक कोवरिन् ने पुरोहित से प्रश्न किया— अनन्त जीवन से तुम्हारा आशय क्या है ?'

'बिलकुल वैसा ही, साधारण जीवन-सा आनन्द। सच्चा आनन्द ज्ञान में है, और अनादि जीवनज्ञान के अगणित, अक्षय स्रोत में उपस्थित है।'

'......पुरोहित ! तुम कल्पना भी नहीं कर सकते, मुझे तुम्हारी इन बातों से कितनी प्रसन्नता हो रही है !'—उज्ज्वल आनन्द के आवेग में कोवरिन् अपने हाथ मसल रहा था।

'मैं तुम्हारी इस बात से प्रसन्न हुआ।'

'फिर भी, मैं सोचता हूँ, जब तुम चले जाओगे, मैं एकान्त में बैठकर तुम्हारे अस्तित्व के विषय में कल्पना करूँगा। तुम भूत हो, भ्रम हो। हाँ......परन्तु......इसका आशय तो यह है कि मेरा शरीर रुग्ण है और मैं इस समय अपनी, मनुष्यों की, वास्तविक अवस्था में हूं ही नहीं।'

'मान लो, यदि ऐसा ही है, तो भी क्या हुआ? तुम्हें इस प्रकार विचलित न होना चाहिए। तुम अस्वस्थ तो केवल इसीलिए हो कि तुमने अपनी शक्तियों से कठोर परिश्रम लिया है, और केवल एक ध्यान के लिए ही तुम अपने स्वास्थ्य का बलिदान कर चुके हो। वह समय समीप ही है, जब तुम अपने लिए अपने जीवन की भी बलि चढ़ा दोगे। बोलो, इससे अधिक तुम और कर ही क्या सकते हो?......मर्त्यलोक के उन्नत व्यक्ति केवल इसकी ही तो कामना करते हैं।'

'परन्तु......परन्तु जब मेरा यह परिचित शरीर रोगी ही है, तो मैं सहसा अपने मस्तिष्क से उत्पन्न इन भावनाओं पर विश्वास ही कैसे कर लूँ?'

'तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि वे सब बुद्धिमान् मनुष्य, जिनकी बातों का समस्त संसार विश्वास करता है, कभी स्वप्न देखते ही नहीं?'— काले पुरोहित ने कहा—'मेरे भाई! पाण्डित्य का ही दूसरा नाम पागलपन भी होता है। तुम जानते हो? मेरा विश्वास करो, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भी साधारण मनुष्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अकर्मण्यता और कायरपन उन लोगों को भयानक कष्ट पहुँचाता है, जिनके जीवन का लक्ष्य केवल वर्तमान पर ही निर्भर है।'

कोवरिन् ने साश्चर्य उसकी ओर देखा--'तुम मेरे अन्तरतम से अपने विचारों को इतना मिला देते हो !......ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तुम सदैव सब स्थलों पर मेरे साथ, मेरी कल्पना के पीछे छाया की भाँति लगे रहते हो !......हाँ, इस 'अनादि सत्य' से तुम्हारा आशय क्या है ?'

काले पुरोहित ने इसका कोई उत्तर न दिया। कोवरिन् ने देखा, पुरोहित क्रमश: वायु के अदृश्य आवरण में विलीन हो गया था।

'अन्त में वह विलीन हो गया न !'—कोवरिन् ने हँसते हुए कहा—'आह !'

क्षणिक उत्साह और प्रसन्नता का आसव ढालकर जब वह घर की ओर चला, वह सोच रहा था—काला पुरोहित और उसकी बातें। अनादि सत्य, अनन्त जीवन, उसका (कोवरिन् का) पाण्डित्य, परोपकार, सहस्रों वर्षों से मानव जाति की संलग्नता-पूर्वक सेवा, और सभी कुछ, जो कुछ भी वह कह गया था। उसने अनुभव किया, काले पुरोहित की प्रायः सभी बातें सत्य थीं।......और वह उस दिन प्रसन्न था।

उद्यान में होती हुई टॉनिया उसीके पास आ रही थी। इस समय वह दूसरी पोशाक पहने हुए थी।

'अरे, तुम यहाँ हो !......और हम लोग तुम्हें खोज रहे थे !...... परन्तु यह क्या ?' – उसके जलमग्न नेत्रों और उसके मुख की विचित्र भाव-मुद्रा को देखकर उसने साश्चर्य प्रश्न किया—'तुम्हें क्या हुआ एन्ड्री ?'

'कुछ नहीं।......कुछ भी तो नहीं हुआ।'—कोवरिन् ने अपना हाथ उसके कन्धे पर रखते हुए कहा – 'मैं प्रसन्न चित्त हूं। टॉनिया, प्रिये मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूं। सच !......मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ, टॉनिया।'

आवेश में उसने उसके दोनों हाथों को चूम लिया, और फिर कहने लगा—'अभी-अभी......कुछ देर पूर्व ही तो, मैं जीवन के अत्यन्तोज्ज्वल, विचित्र और असांसारिक क्षणों में विचरण कर रहा था।... . परन्तु उन बातों को तुम्हारे सामने कहने से कुछ लाभ नहीं।......तुम मुझे पागल समझोगी टानिया,......तुम मेरा विश्वास न कर सकोगी। .....खैर। मैं तो तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ कहना चाहूंगा। टॉनिया, प्रियतमे, मेरी प्राणाधिके, मैं तुमसे सच कह रहा हूं, मेरे मानस में केवल तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब झलक रहा है। मैं तुम्हारे जीवन से, तुम्हारे शरीर से, आह! टॉनिया मैं तुमसे प्रेम करने लगा हूँ। मैं तुम्हें चाहता हूँ, मेरी रानी! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हें नित्यप्रति देखे बिना, मैं जीवित नहीं रह सकता।...... क्या होगा, जब मैं घर लौट जाऊंगा।'

'नहीं'—टॉनिया ने हँस कर कहा—'तुम मुझे बड़ी जल्दी भूल जाओगे; एन्ड्री! बड़े आदमी प्रायः छोटों को भूल जाते हैं।'

'हाँ, मैं तुम्हें अपने साथ ले जाऊँगा टॉनिया, मेरी रानी। हाँ, सच ही, मैं तुम्हें अपने साथ ही ले जाऊँगा। तुम मेरी हो, मेरी ही रहोगी भी।'

'क्या कहा?'—उसने हँसने की चेष्टा की; परन्तु उसकी अपेक्षा लज्जा की लालिमा ने उसके कपोलों पर अपना अधिकार जमा लिया। वह शीघ्रतापूर्वक चलने का उपक्रम करने लगी।

'मेरी धारणा ऐसी नहीं।......मैंने कभी यह सोचा भी न था।'—निराशा की एक हलकी थपेड़ ने उसके दोनों हाथों को मिलाकर रगड़ दिया।

'मेरे दार्शनिक जीवन में प्रणय की धारा बहा देने वाली तुम! आह, तुम!!......'

टॉनिया का लज्जावनत मुख !—

कोवरिन् ने भावावेश में कहा—'आह ! कितनी सुन्दर हो, तुम, मेरी रानी !'

६

निशा के गम्भीर प्राङ्गण में लेटे-लेटे, जब एक दिन उसने सुना—कोवरिन् टॉनिया के साथ विवाह करेगा, उसकी विचित्र अवस्था हो गई। दिन भर अपने घोड़ों को गाड़ी में जोतकर वह कार्य-व्यस्त-सा घूमने लगा। पागल-सा बेचारा ईगॅर सिमानाविच, सदैव कार्य-व्यस्त-ग्रस्त-सा—शरीर एवं मस्तिष्क को किसी क्षण भी विश्राम नहीं। ओह! बेचारा ईगॅर सिमॅानाविच ! टॉनिया उसे देखती—हैट को एकदम कानों तक खींच कर, घोड़ों को चाबुक से मारता हुआ, शीघ्रगामी बूढ़ा—उसका पिता ! उसमें उन दिनों एक विचित्र विचित्रता आविर्भूत हो उठी थी। वह उसे देखती और फिर व्यथित होकर रो पड़ती, अपने कमरे में जाकर।

उद्यान में 'शफ्तालू' और बेरी' तैयार हो गये थे। उन्हें झाबों में पैक करके मास्को भेजना था—कितनी दौड़-धूप और कितने परिश्रम की आवश्यकता थी। गरमी पड़ने लगी थी—पेड़ों को यथेष्ट पानी मिलना चाहिए, इसका यथेष्ट ध्यान रखना था। नौकरों पर विश्वास नहीं, ईगर सिमानाविच और टॉनिया, अधिकतर स्वयं ही अपने हाथों काम करते थे; परन्तु कोवरिन् इसे अच्छा नहीं समझता था। कई जगहों से फलों के लिए आर्डर आ चुके थे, उन्हें भेजना था। चारों ओर केवल कार्य, कार्य, बस कार्य—और

कुछ भी नहीं। प्रचण्ड धूप में दौड़ दौड़ कर स्वयं ही सब देख-भाल करता था—खिजला उठा था, बेचारा ईगर सिमानाविच। बड़बड़ाता जाता और काम करता जाता, बीच-बीच में कभी-कभी काम को अथवा अपने को गोली का शिकार बना देने की धमकी भी देता जाता था।

विवाह के लिए टानिया के कपड़े बन रहे थे। कैंचियों की खटर-खटर दर्जियों का बड़बड़ाते हुए काम करना। घर में मेहमान आये हुए—उनके सुख का भी पूर्ण प्रबन्ध करना था। राम रे! कितना कार्य था बेचारे उन पिता-पुत्री को!

कार्य इतना अधिक होने पर भी, उन दिनों टानिया कभी त्रस्त न हुई। प्रसन्नता का एक अपार स्रोत, उन दिनों उसके जीवन में फूट निकला था। वह उन दिनों इतनी प्रसन्न रहती! इतनी।—वह कोवरिन्-ऐसे महापण्डित और प्रसिद्ध पुरुष को पति-रूप में वरण करेगी!—बहुत दिवसों से यह बात जानते हुए भी, उसे इस पर रह-रह कर आश्चर्य होता था। सुप्रसिद्ध दार्शनिक कोवरिन्—उसका पति! आह! वह कितनी सौभाग्यशालिनी थी!......और फिर जब उसके मन में यह विचार आता कि अगस्त के महीने में उसे अपने वृद्ध पिता अपने उद्यान—जिसमें वह बर्षों खेली-कूदी थी, मकान, जहाँ वह पैदा हुई, पली और इतनी बड़ी हुई थी—सब कुछ छोड़ कर वहाँ से दूर, कोवरिन् के घर चला जाना होगा। तब उसे हार्दिक क्लेश होता। अपने कमरे में जाकर वह, घंटों, मोहवश रोया करती थी।

कभी-कभी जब कोई कहता—कोवरिन् देश का सर्वमान्य विद्वान् है,—वह गर्व से फूल उठती थी। कोवरिन्!—देश का सर्वमान्य विद्वान्!!—

और वह, टानिया, उसकी भावीपत्नी है! उसे सचमुच अपने सौभाग्य पर प्रसन्नता थी। वह चाहती थी, कोवरिन् केवल उसका ही रहे—केवल उसका ही। उसके अतिरिक्त कोई अन्य स्त्री यह कहकर गर्वित न हो सके कि स्वनामधन्य दार्शनिक कोवरिन् मुझसे प्रेम करता है; और इसी कारण यदि वह कभी भी उसे किसी अन्य स्त्री के साथ हँस-हँस कर बातें करते देख लेती – उसे एक ईर्ष्यामय-व्यथा होने लगती। श्रावण की उमड़ती हुई सलिला की भाँति उसकी मानसिक भावनाएँ पिघल कर बह निकलती थीं। वह कोवरिन् में थी, वह चाहती थी कि कोवरिन् भी पूर्णतया टानिया के रोम-रोम में अपना घर बना ले। बस!

अहर्निशि टानिया की शरीर-वीणा, पिता के संकेत-भाव पर उद्यान में, घर में, मधुर झन झन-सी झनझनाया करती। वह, उन दिनों, तब भी प्रसन्न थी—साकार प्रसन्नता-सी कूकती हुई, जवानी की हिलोरों में झूमती हुई, सौभाग्यवती पगली टानिया।

मानसिक चिन्ताओं का भार वृद्ध परिश्रमी शरीर के ढीले मज्जा-तंतुओं में बहाकर परिश्रमी—पागल-सा ईगर सिमानाविच अविश्रान्त, जादू के पुतले-सा, कार्यव्यस्त रहता था। आत्मिक आधार पर निर्मित उसका शरीर-प्रासाद, मन की दो मूर्तियों का निवास-स्थान था। उनका नाम?—हम उन्हें क्या कह कर पुकारें?—कह लीजिए एक वास्तविक ईगर सिमानाविच था और दूसरा अपने अस्तित्व को स्वप्न में बिखेर कर चलने वाला—वही नाम—ईगर सिमानोविच। एक—जब वह अपने मालियों पर चिल्लाता हुआ, पागल-सा अपने उद्यान की सेवा करने में तल्लीन रहता था; और दूसरा शराब के नशे में, चिन्ताग्रस्त बूढ़ा, झुका हुआ कहा करता—जानते हो!

अपने ही रक्त वीर्य से बना हुआ माया-ममता का मूर्तिमान साकार मनुष्य ! उससे प्रेम करता ही है। उसकी माँ ! आह ! कितनी सुन्दर, पति-परायणा और सुशीला थी ! गायिका वह थी, कवियित्री वह थी, चित्रकार वह थी, पाँच-पाँच भाषाएँ जानती थी—वह क्या कुछ नहीं जानती थी, मेरी रानी ! ...क्षय ! क्षय ने तो उसे क्षया बना डाला !......उफ् ! हे भगवान् !... .. उसकी आत्मा को सदैव शान्ति प्रदान करो—मेरे प्रभु ! मेरे मालिक !

और मन का वह काल्पनिक ईगर सिमानाविच एक विश्वास छोड़ कर फिर कहने लगता—

'छोटा-सा अबोध शिशु ! उसके माता-पिता उसे इतना ही सा छोड़ कर, अनन्त-यात्रा के लिए निकल गये थे ! यहीं पला, बड़ा हुआ विद्वान् हुआ। अरे, वह तो न्यायाधीश होने के योग्य है ! .....और तुम देखोगे इवान्, दस वर्ष के भीतर ही वह उस पद पर अवश्य आसीन हो जायेगा।'

प्रधान माली इवान् कार्लविच समझता—आज उसके प्रभु उससे प्रसन्न हैं; परन्तु तभी वास्तविक ईगर सिमानाविच चिल्ला कर कह उठता—राक्षसो ! तुम मेरे उद्यान को नष्ट कर डालोगे।......मेरी जान बस इसी चिन्ता में जायेगी।

वासना, प्रेम दर्शन शास्त्र, काला पुरोहित—विचार-वीथि में झूलता हुआ कोवरिन् उन दिनों प्रसन्न था; वास्तविक प्रसन्नता सदैव उसके हृदय में हिलोरें लिया करती थी। वह, एकान्त में, जब टानिया से मिलता, उसे चूमता, तब उसे शारीरिक प्रसन्नता का आभास मिलता। सप्ताह में तीन-चार बार जब उसे काले पुरोहित के दर्शन होते, वह उसके साथ बैठ कर

घण्टों बातें करता, तब उसे मानसिक प्रसन्नता प्राप्त होती थी। सच पूछिए, तो उन दिनों उसके पास सुख के अतिरिक्त और था ही क्या।

एक दिन आया, उसका विवाह हो गया—समारोह के साथ। जीवन की धारा बह कर, सुख के अन्तर-पट खोल उसमें बहने की चेष्टा करने लगी।

वह सुख में था; परन्तु सुख भी उसमें मिलने के लिए उत्सुक रहता था—यह कौन जाने।

७

सन्-सन् करती हुई शीत की नीरव रजनी में, एक रात वह लेटा हुआ एक फ्रांसीसी उपन्यास पढ़ रहा था। टानिया स्वप्न के डोरे में गुदगुदी की माला पिरो रही थी। उसके सिर में दर्द रहता था—और इसका कारण केवल यह था कि उसे नगर का कोलाहलमय वातावरण, वहाँ की जलवायु; अधिक रुचिकर प्रतीत न होती थी। वह सो रही थी।

एक! दो!! तीन!!!–समय परिचायक ने अपने आन्तरिक यन्त्रों को जगा कर कहा—एक! दो!! तीन!!! तभी कोवरिन् ने पुस्तक रख दी और मोमबत्ती बुझा दी। वह लेट गया, उसने आँखें बन्द कर लीं—केवल निद्रा का आवाहन करने के लिए। परन्तु, वह सो न सका। टानिया स्वप्न में बड़बड़ा रही थी। टन! साढ़े तीन, फिर चार, फिर साढ़े चार भी बजे; परन्तु उसे नींद न आई! उसने फिर मोमबत्ती जला दी। तभी उसने देखा, उसके सम्मुख, कुरसी पर काला पुरोहित बैठा हुआ था।

'नमस्ते!'—एक क्षण के पश्चात् निस्तब्धता भंग करते हुए उसने कहा—'तुम इस समय क्या सोच रहे थे?'

'गौरव-गरिमा की उत्तुङ्ग गिरि-माला पर विचरण करता हुआ उसी के विषय में चिन्तन् भी कर रहा था।'—कोवरिन् कहने लगा—'अभी-अभी एक फ्रांसीसी उपन्यास पढ़ रहा था। उसका नायक सदैव मूर्खता का परिचायक बना रहा, और अन्त में गौरव की उत्तेजना ने ही उसे उस स्थल तक पहुँचा दिया, जहाँ प्राण प्रकृति से मिल जाता है।......भाई, मैं तो कभी भी इसका विचार तक अपने मन में नहीं लाता !'

'तुम चतुर हो न ! उद्भट विद्वान् ख्याति को केवल खेलने की वस्तु ही समझते हैं। वे कभी भी उस पर आसक्त नहीं हो सकते।'

'तुम ठीक कह रहे हो, पुरोहित !'

'लोग नाम पर क्यों मरते हैं ? नाम ?...हिंः कालान्तर में, अतीत के स्वप्न-सा जब वह मिट जायेगा, तब, क्या रह जायेगा ?—कुछ भी नहीं—पत्थरों पर घिसे हुए नामों का अवशेष।—लोग उसे पढ़ भी न सकेंगे। हाँ, तुम-ऐसे थोड़े से विद्वान् अवश्य ही मानव-शरीर के हृदय-पटल पर अंकित रह कर तुम लोगों के प्रति अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करेंगे।'

निश्चय ही।'—कोवरिन् ने गम्भीरता-पूर्वक कहा—'परन्तु हम उन्हें स्मरण ही क्यों रक्खें ?......परन्तु......अब इन बातों को छोड़ो। किसी गहन विषय पर तार्किक वार्तालाप हो।......लो, आज हम 'प्रसन्नता' के सम्बन्ध में ही क्यों न तर्क करें।'

घड़ी ने जब उसी चिर-गम्भीरता के साथ पाँच बजाये थे, वह अपने पैरों को फ़र्श पर बिछे हुए गलीचे पर रगड़ता हुआ पुरोहित से कह रहा था—विश्व के कैशोर में एक मनुष्य था, वह अपनी प्रसन्नता को देख कर सहसा डर जाया करता था। वह इतना महान् था।...तुम जानते हो, मैं भी

अब ठीक उसी की भाँति अपनी प्रसन्नता से डर गया हूँ। सूर्य की प्रथम किरण से चन्द्रमा की अन्तिम आभा तक; अब मैं केवल प्रसन्नता का ही अनुभव करता हूँ—व्यथा एवं चिन्ता का लेश-मात्र भी नहीं।—और सच पूछो, तो मुझे अब उस पर सन्देह होने लगा है।

'ऐसा क्यों, कोवरिन्?'—पुरोहित ने आश्चर्य-सूचक स्वर में कहा—......तो तुम प्रसन्नता को एक अलौकिक पदार्थ मानते हो?—साधारण नहीं?......मनुष्य जितना ही सच्चरित्रता एवं आध्यात्मिकता के सौध-शिखर पर चढ़ता है, उतना ही वह स्वतंत्र हो जाता है, और अपने जीवन में उसे उतनी ही प्रसन्नता प्राप्त होती है। साक्रिटीज़, डिऑजिन्स, मारकस एरिलस आदि बड़े-बड़े विद्वान् कभी भी दुःख-सुख का अनुभव नहीं करते थे। वे तो केवल प्रसन्न रहते थे, प्रसन्नता ही उनके जीवन का ध्येय था।'

मुझे भय है कहीं मेरे देवता मुझसे अप्रसन्न न हो जायें।'—कोवरिन् ने व्यंगात्मक-हास्य के साथ कहा—'परन्तु मैं,......मुझे यह निश्चय बिश्वास है कि वे कभी भी मुझे एक-एक रोटी के लिए तरसा कर मेरे जीवन में अशान्ति की तीव्र धारा न बहा देंगे।'

टानिया जाग पड़ी। उसने देखा—उसका पति अपने आप ही बैठा हुआ हँस रहा है, विचित्र रीति से वार्तालाप कर रहा है। वह डर गई।

'एन्ड्री! तुम किससे बातें कर रहे हो?'

'किससे?'—कोवरिन् ने उत्तर दिया—'तुम देखतीं नहीं, काला पुरोहित!......वह सामने बैठा है।'—उसने पुरोहित की ओर इङ्गित किया।

कौन ?......पुरोहित !......यह तुम क्या कर रहे हो प्रिय ?—टानिया ने साश्चर्य कहा—'वहाँ तो कोई भी नहीं !..... तुम अवश्य ही अस्वस्थ हो, मेरे प्रिय, मेरे प्राण !'

टानिया ने आवेग में उसे अपने स्पन्दित हृदय से एक दम सटा लिया, और उसकी आँखों में आँखें डाल कर कहने लगी—

'तुम्हें क्या हो गया है, एन्ड्री ?......मैं देखती हूँ महीनों से तुम्हारी ऐसी ही दशा है ।......मेरे प्रिय, तुम्हें क्या हो गया है ?'—वह रो रही थी।

कोवरिन् ने चकित होकर देखा—कुरसी खाली पड़ी थी। उसने सहसा अनुभव किया—निर्बलता उसके एक पार्श्व में बैठी हुई उसे अशक्त बना रही थी।

'मुझे कुछ भी तो नहीं हुआ है,......टानिया !......तुम इस तरह विचलित क्यों हो ?......मैं......स्वस्थ हूँ,......हाँ......हाँ, जरा निर्बल......'

'मैंने प्रायः अनुभव किया है, तुम कभी-कभी अपने आप ही हँसते हो, वार्तालाप करते हो. तर्क-वितर्क करते हो, यह सब तुम्हारी अस्वस्थता के परिचायक नहीं तो और क्या हैं ?......मेरे प्रभु !......पापा भी तुम्हारी ओर से अधिक चिन्तित रहते हैं !......तुम्हें......'

कोवरिन् ने कपड़े पहन लिये। टॉनिया भी प्रस्तुत हो गई। वे यह भी नहीं जानते थे कि उन्होंने वस्त्र क्यों पहने थे। कोवरिन् सोच रहा था—काले पुरोहित ने मुझे पागल बना डाला है।

वे नीचे आये। ईगर सिमानाविच उन दिनों वहीं था। अपने जामाता

की शोचनीय अवस्था देख कर उसने जुल-जुल आँखों से दो बूँदें टपका दीं।

उस दिन कोवरिन् एक चिकित्सक के पास गया था— अपनी चिकित्सा कराने के लिए।

८

ऋतु चक्र घूम कर खड़ा हो गया! फिर ग्रीष्म थी—डॉक्टरों ने उसे वायु-परिवर्तन करने का आदेश दिया। इसीलिए तो वह गाँव आया था। वह अब क्रमशः स्वस्थ हो चला था; परन्तु उसने काले पुरोहित को भी बहुत दिनों से नहीं देखा था। अब वह दिन में केवल दो घंटे कार्य करता; दूध खूब पीता और सदैव अपने श्वसुर के साथ ही रहता। शराब और सिगार तो उसने एक दम छोड़ ही दिये थे।

ईसा की किसी शताब्दी की उस उन्नीसवीं जून को ईगर सिमानाविच के यहाँ पूजा थी। हाल का वायुमण्डल चर्च-सा महक रहा था। कोवरिन् को यह सब अच्छा न लगा। वह उद्यान की ओर चल दिया।

तृण, लता, वृक्ष, फल, फूल पल्लव—उद्यान में यही सब कुछ तो था। वह उन्हीं के मध्य से होकर नदी की ओर बढ़ चला। उस पार. वृक्षों का समूह खेत। यहीं, इसी स्थल पर, गत वर्ष उसने काले पुरोहित को पहली बार देखा था।

वह फिर लौट आया!

घर आकर उसने देखा—पिता-पुत्री बैठे हुए चाय पी रहे थे।

'तुम्हारे दूध पीने का समय हो गया है।'—तानिया ने पति से कहा।

'नहीं! मैं नहीं पियूँगा।......तुम्हीं पी जाओ।'—कोवरिन् ने उत्तर दिया।

अपने पिता की ओर सभ्रम नेत्रों से निहार कर उसने धीरे से कहा—'तुम जानते हो, दूध पीने के कारण ही आज तुम स्वस्थ हो सके हो।'

'हाँ, इसने मुझे बहुत लाभ पहुँचाया!'—कोवरिन् ने हँस कर कहा—'तुम्हारी ही सेवा के कारण मैं अब स्वस्थ हो चला हूँ। देखो न, गत शुक्रवार से आज तक मैं एक पाउण्ड बढ़ गया।'—सहसा अपने दोनों हाथों से मस्तक दबाते हुए व्यथामय स्वर से वह कहने लगा—'परन्तु... परन्तु क्यों तुमने मुझे नीरोग बना दिया?......औषधि, दूध, विश्राम—एक-एक क्षण पर मेरी दशा की परीक्षा करना—तुम सबने मिल कर मुझे मूर्ख बना डाला है। ....मैं पागल था, अच्छा था। मैं तब प्रसन्न था, सुखी था।... ..और .. ..और अब?—अब तो मैं भी इस विश्व के अन्य सांसारिक जीवों-सा हो गया हूँ।......आह! अब मैं बिलकुल भी सुखी नहीं हूँ।'

'केवल परमात्मा में ही इतनी शक्ति है कि तुम्हारी इन सब व्यर्थ की बातों का आशय समझ सके।'—ईगर सिमानाविच ने एक निःश्वास छोड़ते हुए कहा—'तुम्हारी इन सब बातों को सुनना भी मूर्खता है।'

'तो आप से कहता कौन है कि आप मेरी इन बातों को सुनें।'

तब से उसे अपने श्वसुर से घृणा-सी हो गई। वह सब से ही घृणा करने लगा था। सबको ही कोवरिन् के स्वभाव के इस आश्चर्य-जनक

परिवर्तन पर आश्चर्य होता था। और बेचारी टॉनिया! आह!—वह सबसे अधिक दुखी थी। उसको फिर किसी ने हँसते अथवा गाते नहीं सुना।

और कोवरिन!—

कभी-कभी वह उससे कहा करता था—'भगवान् बुद्ध और पैग़म्बर मुहम्मद कितने प्रसन्न रहते थे। उन्हें कभी भी, किसी ने सांसारिक पुरुष बनाने की चेष्टा नहीं की।......यदि मुहम्मद को भी इसी प्रकार दूध पीने पर बाध्य किया जाता, उन्हें इसी प्रकार औषधि-सेवन कराया जाता, काम न करने दिया जाता, तो आज वह अपने पीछे क्या छोड़ जाते?—कुत्ता? यह चिकित्सक, तुम लोग मेरे सहृदय सम्बन्धी, सभी कोई मनुष्यता को नीरस एवं व्यर्थ बनाने की चेष्टा कर रहे हैं।......तुम लोग नहीं जानते, वह समय शीघ्र ही आ रहा है, जब संयम ही बुद्धिमत्ता समझा जायगा।......आह! यदि कहीं तुम लोग जानते होते!—मैं तुम लोगों का कितना कृतज्ञ हूँ।'

उसका हृदय घृणा से भर उठा था। वह अपने कमरे में चला गया। चन्द्र-किरणें उसके नीरव प्रकोष्ट में लोट रही थी। पुष्पों की भीनी सुगंध ने उसे मस्त बना दिया। उसने सोचा—गत वर्ष, इन्हीं दिनों जब वह शराब पीकर सिगार का धुआँ उड़ाता था।—उसने नौकर को शराब और सिगरेट लाने की आज्ञा दी।......दो घूँट मदिरा और कश।—वह इसी में विकल हो उठा।—उसने बहुत दिनों से यह सब कुछ छोड़ रक्खा था, इसी से वह औषधि नहीं पीना चाहता था; परन्तु स्वस्थ होने के लिए उसे पीना ही पड़ी।

दिन की घड़ियों को शारीरिक परिश्रम में बिता कर जब वह निशा के अपरान्ह में सोने जाने लगी, उसने कोवरिन् से नम्रतापूर्वक कहा—

'तुम देखते हो, एन्ड्री, पापा आजकल कितने म्लान रहते है। जानते हो क्यों ?—तुम उनके साथ कितना असद्व्यवहार करते हो।—आह ! इससे उनके व्यथित मन को कितनी पीड़ा होती है।......प्रिय ! परमात्मा के लिए, अपने स्वर्गीय पिता के नाम पर, मेरी शान्ति के लिए—तुम उनसे बोला करो। उनके साथ दुर्व्यवहार मत करो।'

'असम्भव। मैं कुछ भी नहीं कर सकता।'

'परन्तु ऐसा क्यों ?'—कम्पित स्वर में उसने प्रश्न किया।

'इसलिए कि मैं उनसे घृणा करता हूँ।......बस।'—कोवरिन् ने अन्यमनस्कता-पूर्वक, कन्धे हिलाते हुए उत्तर दिया—'परन्तु अच्छा तो यही होगा कि तुम उनके सम्बन्ध में कुछ भी मत कहो, वे तुम्हारे पिता हैं।'

'एन्ड्री !......एन्ड्री !!......तुम अब बदल क्यों गये ? मेरे प्रिय !......मैंने कभी भी तुम्हें इस प्रकार मूर्खता करते हुए न देखा। तुम, कदाचित् स्वस्थ होने पर अपने इस दुराचार के व्यवहार पर पश्चाताप करो, सम्भव है, तब तुम सहसा इन बातों पर विश्वास भी न कर सको। देखो न !......पापा......वे कितने अच्छे हैं।......'

'अच्छे ?......नहीं वह अच्छे तो नहीं;......हाँ......विनोद-प्रिय हैं; परन्तु मैं तो उनसे घृणा करता हूँ और करता ही रहूँगा।'

'यह तुम्हारा हठ है। तुम कितने निर्मम हो ! आह।...'

कोवरिन् ने उत्तर दिया, परन्तु पीड़ाओं के भार से वह इतनी दब गई

थी कि उसे सुन ही न सकी। वह देख रही थी—कोवरिन् के अस्वस्थ मुख पर घृणा और भयंकरता की काली ऊँची उठी हुई रेखाएँ। उसने उन्हें ध्यान-पूर्वक देखा और भयभीत हो उठी।

टप, टप, दो आँसू ढुलक पड़े, फिर वह आँखे पोछ कर शयनागार से चल दी।

९
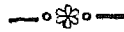
विद्युत् के चपल प्रवाह-सी नवीन समाचारों की एक तीव्र धारा चतुर्दिक व्याप्त हो गई। दीवारों पर चिपके हुए बड़े-बड़े विज्ञापनों में लोगों ने पढ़ा—सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीयुत कोवरिन दिसम्बर मास के दूसरे दिन, विश्वविद्यालय में, अध्यक्षपद से अपना सारगर्भित भाषण पढ़ेंगे। प्रबन्ध बड़े समारोह के साथ किया गया था, परन्तु उस दिन विश्वविद्यालय के अधिकारियों को तार मिला, उसमें लिखा था—महाशय कोवरिन् की आकस्मिक अस्वस्थता ने उन्हें अपना कार्य सम्पादन करने के योग्य नहीं रक्खा।

उसके कण्ठसे रुधिर निकलने लगा था, और इसीसे वह अत्यधिक अशक्त हो गया था। कोवरिन् इससे डरा नहीं। उसे विदित था, उसकी माता इसी रोग में दस वर्षों तक अवनीतल पर अपनी समस्त शारीरिक विभूतियों को बटोर कर बैठी रही थी। और डाक्टरों ने भी इस रोग को विशेष चिन्तनीय

नहीं समझा था—उन्होंने उसे यह आदेश दे रक्खा था कि वह नियमित रूप से अपना जीवन यापन कर सकता है।

इसी रोग के कारण उसका व्याख्यान जनवरी में भी स्थगित कर दिया गया, और फ़रवरी में तो अधिक विलम्ब हो गया था; अतएव व्याख्यान आगामी वर्ष तक के लिए स्थगित कर दिया गया।

'न मालूम किन भावनाओं की शृंखला में बँध कर उसने टॉनिया को भी छोड़-सा दिया था। एक अन्य स्त्री—जो उससे अवस्था में कहीं अधिक थी—उसके प्रेम की पात्री बन गई। वह आवश्यकता से अधिक शान्त और आज्ञाकारिणी थी। उसने उसे क्रीमिया ले जाने का प्रबन्ध किया।

यद्यपि वह जानता था कि इस परिवर्त्तन से उसे कोई लाभ न होगा, फिर भी वह उसके साथ चलने को प्रस्तुत हो गया। एक रात्रि को वह 'वारवेरा निकोलिना' (यही उस स्त्री का नाम था , के साथ 'सीवास्तपोल चला गया, और वे उस रात्रि को वहाँ 'चाल्ता' जाने के लिए रुक गये।

जीवन की उस परिवर्तित संध्या के समय उसे टानिया का एक पत्र मिला। उसने उसे खोला तक नहीं, फेंक दिया, जैसे उसमें कुछ था ही नहीं। उस दिन वह अनुभव कर रहा था—उसने टॉनिया के साथ विवाह कर अपराध किया था; और उसे छोड़ देने में उसे प्रसन्नता हुई थी।

अनियन्त्रित दिनों में उच्च दार्शनिक विचारों की रहस्यमयी भावनाओं को अक्षरों की पंक्तियों में बाँध कर उसने रक्खा था। बहुत से लेख थे। उसने उन सबको फाड़ डाला, और खिड़की के द्वारा कागज के छोटे छोटे टुकड़े वायु में तितलियों से उड़कर नीचे पृथ्वी पर विश्राम करने लगे। उसने तब विश्राम की एक लम्बी-सी साँस ली।

सहसा उसने टानिया के पत्र को उठा लिया। उसमें लिखा था—

'तुम चले गये।।पिताजी सब कुछ छोड़ कर सर्वदा के लिए चल दिये—तुम्हारे ही कारण। उनका उद्यान अपरिचितों के अनभिज्ञ हाथों में पड़कर नष्ट हो गया।......एन्ड्री, अब मैं तुमसे घृणा करती हूँ! इतनी घृणा! ......आह! निर्दय. अब मैं तुम्हारा मुख भी नहीं देखना चाहती। मैं चाहती हूँ तुम जल्दी-से-जल्दी ठोकरें खाकर. पतितों की पग-धूलि में मिलकर, पिस कर नष्ट हो जाओ। तुम्हारी मृत्यु कुत्तों की......।'

इससे अधिक वह न पढ़ सका। उसने पत्र फाड़ कर फेंक दिया और शय्या पर लेट गया। पास ही के कमरे में वारवेरा निकोलिना सो रही थी।

थोड़ी दूर पर एक कमरे में उसे वायलिन की झनकार सुनाई पड़ी। जैसे - कोई युवती रहस्यवाद की पवित्र भावनाओं को नश्वर प्राणियों में बिखेर रही हो!

कोवरिन् की हृद्गति तीव्र हो उठी। तांत्रिक विधि से वह जैसे झन्झन् कर रही थी।

उसने अपने सम्मुख देखा—काला-काला बवा-सा वायु का विशाल स्तूप बन कर चिचलित हो उठा; और थोड़ी ही देर में स्पष्ट रूपेण उसने देखा—काला पुरोहित...... ।

'तुमने मेरी बात पर विश्वास क्यों नहीं किया?'—प्यार-मिश्रित फटकार के साथ उसने कोवरिन् से कहा —'जब मैंने तुमसे कहा था, तुम विद्वान् हो, तब तुमने मेरी उस बात का विश्वास क्यों नहीं किया?—बोलो!......यदि तुम ऐसा करते तो यह दो वर्ष तुम्हें इस घोर संताप के साथ कभी न बिताने पड़ते।'

उसे फिर उसकी बात पर विश्वास होने लगा। वह फिर समझने लगा कि परमात्मा ने उसे पृथ्वी पर किसी विशेष कारण से भेजा था। उसने चाहा कि वह पुरोहित को कुछ उत्तर दे।......परन्तु कण्ठ से रक्त......। वह हृदय पर हाथ रख कर उसे शान्त करने की चेष्टा करने लगा। उसकी कमीज़ खून से भींग गई थी। उसने चाहा, वह निकोलिना को आवाज दे, और उसने पुकारा—

'टॉनिया !'

वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, और हाथ उठा कर उसने फिर पुकारा—

'टॉनिया !'

वह चिल्लाया—टॉनिया ! टॉनिया !!—वह टानिया के लिए व्यग्र हो उठा।......अलौकिक पुष्पों का अनुपम उद्यान !—वह उसके लिए चिल्लाया। अपने साहस, अपनी प्रसन्नता, अपने जीवन - वह इन सब के लिए चीख उठा। अनाज के बड़े-बड़े खेत ! अशोक का शोकहीन वृक्ष !!—जहाँ उसने काले पुरोहित के दर्शन किये थे, वह उन्हें भी चाहता था !—वह उनके लिए भी चिल्ला उठा !......परन्तु वह चिल्लाया ही कहाँ था !—अपार निर्बलता से जकड़ कर पृथ्वी पर पड़ा हुआ वह देख रहा था, अपने सामने—रक्त का एक स्रोत ! झंकृत मस्तिष्क पियानो के स्वर अवरोह-सा, झनकार रहा था—टानिया ! टानिया !! वह कुछ भी न बोल सका। हाँ !... उसके शरीर में, सहसा एक असीम प्रसन्नता का विशाल आगार उसके रोम-रोम में, भर गया। प्रकोष्ठ के नीचे, रात्रि का अन्तिम गीत गाया जा रहा था, और काला पुरोहित उसके कान में जैसे कह रहा था—'तुम विद्वान थे; परन्तु तुमने अपने को पहचाना नहीं। तुम मर रहे हो, इसीलिए, कि

तुम अपने को भूल गये थे। तुम निर्बल थे—तुम कुछ भी नहीं कर सकते थे।'

बारवेरा निकोलिना जब सोकर उठी, उसने देखा—कोवरिन् पृथ्वी पर मरा हुआ पड़ा था।......उसके मुख पर प्रसन्नता थी। इतनी !...... इतनी !!......

दो घटनायें

नीरवता का आवरण ओढ़कर सितम्बर की काली संध्या ने प्रवेश किया था; और दस बजे थे तब, जबकि मृत्यु उसे अपनी झोली में उठा ले गई।

जीवन की इनी-गिनी घड़ियों में भी वह केवल ६ तक ही गिन पाया था, उसे 'डिप्थीरिया' हुआ, और इसी में वह मर भी गया। भोला-सा, प्यारा-सा प्रसिद्ध चिकित्सक किरलॉफ़ का एक-मात्र पुत्र, एन्ड्री' !—अस्थि-पञ्जर से टकराती हुई, शरीर के मज्जा-तन्तुओं की शृंखला को तोड़कर, 'आह'-सी फूँक-सी प्राणवायु, दो जीवित शरीरों के दग्ध हृदयों में चीत्कार की भयंकर लपट उठाकर, विश्व के वायु-मण्डल में विलीन हो गई।

इस कल्पित विश्व की मानी हुई माता, मरे हुए बच्चे की काल-शय्या के सिरहाने घुटने झुकाकर झुकी हुई बैठी थी। मृतक की मौन यन्त्रणाओं की अन्तिम झलक, उसके विगत चीत्कारों के साथ प्रतिध्वनित हो, प्रकोष्ठ के वायु-मण्डल में सिसकियों का भार लादे हुए, गूंज रही थी।

और तभी हृतन्त्री के टूटे हुए तारों के साथ झन्-झन् करती हुई हाल की घण्टी बज उठी।

एन्ड्री को छूत की बीमारी थी; इसीसे उस दिन सवेरे ही सब नौकरों को छुट्टी दे दी गई थी। अर्द्धविक्षिप्त-सा किरलॉफ़ कमीज़ पहने हुए खड़ा था। कार्बोलिक-एसिड से उसके हाथ जल गये थे। घंटी की आवाज़ सुनकर उसने स्वयं ही दरवाज़ा खोल कर देखा। हाल में अंधकार काली चादर लपेटे हुए सिसक रहा था। उसने देखा— एक सजीव मानवमूर्ति उसके सामने खड़ी थी; परन्तु वह उसे पहचान न पाया—सफेद मफ़लर पहने हुए, पीला-सा, लम्बे मुँह वाला, मझोला क़द—बस, यही तो वह उस घोर अंधकार में भी देख सका था।

'क्या डाक्टर साहब का मकान यही है?'—उसने पूछा। वह घबराया हुआ-सा प्रतीत होता था।

'जी हाँ; और मैं ही डाक्टर हूँ।'—किरलॉफ़ ने उत्तर दिया—'कहिए, आपने कैसे कष्ट उठाया?

'आप ही डॉक्टर हैं?...आह!—मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई आपके दर्शन करके,......सचमुच, मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।'—धूमिलता के आवरणसे उसका हाथ निकल कर डाक्टर के हाथ से मिल गया—'मुझे बड़ी......बड़ी प्रसन्नता हुई। हम आप तो परिचित हैं। मेरा नाम एबॉगिन है।......इसी गर्मी में ही तो मुझे आपका परिचय पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह मेरा सौभाग्य था कि इस समय आप मिल गये। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।......हाँ, एक प्रार्थना

करता हूँ, डॉक्टर,......मुझे निराश न कीजिएगा।......मेरी पत्नी इस समय बहुत बीमार है......मैं आपके लिए गाड़ी लाया हूँ।'

उसके स्वर में कम्पन था, ठीक उसी भाँति, जैसे वह जीवन के किसी भयंकर प्रदेश में मृत्यु की काल्पनिक प्रतिमा देखकर काँप उठा हो। उसके स्वर में आग्रह था, हठ था, आर्द्रता थी, विनय था, संतप्तता थी, कंपन था। पागल कुत्ते से डरे हुए मनुष्य सा अग्निकी भयंकर लपट से झुलसे हुए पीड़ित प्राणी-सा वह स्वरारोह में, श्वास के तीव्र वेग को रोकने का उपक्रम कर रहा था। नीरव रजनी के अन्धकारमय आकाश में विद्युत् के भयंकर अट्टहास से डरा हुआ बालक सा!—उसके रोम-रोम में स्नेह-सिक्त आर्द्रता व्याप्त थी।

'मुझे भय था, आप इस समय न मिल सकेंगे।'—वह कह रहा था—'मार्ग में आशंकाओं ने मुझे आग्रस्त कर लिया था।......ओह। परमात्मा के लिए शीघ्र ही कपड़े पहन कर मेरे साथ चलिए।...बात ऐसे है, हम लोग सायंकाल के समय घूमने गये थे, और......फिर चायपीने बैठे।...एलेक्जेंडर सिमानॉविच भी हम लोगों के साथ थे—आप तो उनसे परीचित हैं न?...साधारणतया वार्तालाप चल रहा था, और तभी अनायास ही वह कुर्सी पर गिर पड़ी। हम लोगों ने उसे शय्या पर सुला दिया।...उस मुँह पर पानी के छींटे दिये, साधारणतया जो कुछ भी उपचार हो सका करने का प्रयत्न किया...परन्तु...परन्तु डॉक्टर वह तो मृत्यु-सी मौन हो गई है, सचमुच इस समय वह एक शव के समान है...उसे 'एन्यूरिज़्म' हो गया है......रक्षा करो, डॉक्टर...उसका बाप भी इसी बीमारी में मरा था।'

किरलॉफ़ इसे सुनता रहा; परन्तु उसने इसका उत्तर न दिया। ऐसा मालूम होता था जैसे वह अपनी भाषा भूल गया हो। वह अपने विचारों में मग्न था; परन्तु जब एबॉगिन ने उससे फिर प्रार्थना की, उसने कह दिया—

'क्षमा कीजिए महाशय, मैं विवश हूँ, जा नहीं सकता। ..अभी एक पाँच मिनट हुए...मेरा बच्चा जाता रहा।'

'ओह !'—एबॉगिन चीख़ उठा—'ओह ! भगवन्, मैंने कितने बुरे समय में आपसे याचना की ! कितना दुःखमय दिवस है आज...सचमुच आश्चर्यपूर्ण, दुःखमय ! दुःखों की दो उद्वेलित धाराओं का कितना भयंकर आलिंगन...जैसे आज का दिन इसके लिए बना ही था।'

एबॉगिन दरवाजे का सहारा लेकर झुक-सा गया। उसके मुख पर पीड़ा, करुणा, और चिन्ता की एक गहरी छाप का आभास मिल रहा था। वह सोच रहा था—लौट जाऊँ, अथवा डॉक्टर से भी साथ चलने की प्रार्थना करूँ।

'डॉक्टर'—उसने धैर्य्य-पूर्वक किरलॉफ़ के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा —'मैं आपकी दशा अनुभव कर रहा हूँ। ईश्वर जानता है, लज्जा इस समय मेरा हाथ घसीट कर इसी क्षण मुझे यहाँ से चले जाने का आग्रह कर रही है; परन्तु...मैं क्या करूँ ? आप ही सोचें—मैं इस समय किससे अपनी जीवन संगिनी की प्राण-रक्षा करने के लिए प्रार्थना करूँ ? इधर आपके अतिरिक्त और कोई चिकित्सक भी तो नहीं है।......डॉक्टर ! परमात्मा के लिए ! सचमुच, डॉक्टर उसी के लिए।...चलिएगा न ? बोलिए ! बोलिए !!'

स्तब्धता, कुछ क्षणों के लिए, परिप्लावित हो, मौन हो गई। निस्तेज नेत्रों से, किरलॉफ़ हाल के अन्धकार को अकर्मण्य-सा ताकने लगा। वह थोडी देर के लिए, बग़ल वाले कमरे में जाकर लैम्प की धूमिल ज्योति के सामने एक मोटी-सी किताब के पन्ने पलटते हुए कुछ सोचने लगा। वह कुछ क्षणों के लिए यह भूल गया कि हॉल में एक अपरिचित व्यक्ति उसकी प्रतीक्षा में खड़ा है। अपने बीते हुए जीवन की एक-एक गति, क्षणों की विलीनता के साथ छायापथ के चित्रों की भाँति वह कल्पना के धवलपट पर देख रहा था।

और उस समय शयनागार में निस्तब्धता, गम्भीरता का आवरण ओढ़ कर लोट रही थी। स्टूल पर रखी हुई मोमबत्ती रो रही थी। उसके गिरते हुए उष्ण अश्रु-कण मृत्यु के-से कठोर हृदयवाली काठ की उस छोटी-सी दुनिया में गिरकर उसीमें रह जाते थे; और उसे जैसे उनकी पर्वाह ही न थी। मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ निश्चेष्ट बालक! उसके अधखुले नेत्रों से मोह और वेदना की एक धूमिल धारा निकल कर मानव मस्तिष्क को चीरती हुई, उसमें क्रांति मचा सकती थी। काली—उसकी मरी हुई काली-काली आँखें मानो अंधकार अपनी समस्त कालिमा को बटोर कर उनमें घुसने की चेष्टा कर रहा हो, और फिर वे आँखें सिसक-सिसक कर अपनी आत्मा को फिर से शरीर में प्रवेश करने का आमन्त्रण दे रही हों। प्रकोष्ठ, दीपक, शय्या, और वहाँ बिखरी हुई समस्त वस्तुएँ एक मौन 'साँय साँय' करती हुई अपने छोटे-से एन्ड्री की आत्मा को बिदा देती हुई रो रही थीं। उसके मृत शरीर पर झुकी हुई माता की संतप्त आत्मा अपने निश्चेष्ट शरीर को भी उसपर झुका कर धैर्य के प्रांगण में सिसक रही थी, बिलख रही थी।

प्रकोष्ठ का समस्त वातावरण चीखा, तड़पा, फिर मर गया—जैसे उसने कुछ अनिश्चित् समय के लिए विश्राम की गोद में जाना चाहा हो।

डॉक्टर उस कमरे में आया, और आकर अपनी पत्नी के निकट खड़ा हो गया। पतलून में हाथ डाले हुए, उसका शरीर अपनी भरी हुई आँखों-द्वारा अपने मरे हुए बच्चे के मुँह पर पड़ी हुई मृत्यु की स्पष्ट छाप देख रहा था। उसमें अबतक कोई परिवर्तन न हुआ था—मरने से पहले पीड़ाओं से आक्रांत हो, जब वह रोया था, उसके उस समय के बिखरे हुए वे थोड़े-से बचे खुचे मोती अब भी उसके ठंढे गालों पर इधर-उधर ढुलक कर जम गये थे।

मृत्यु के उपरांतवाली मनुष्य की भयंकर मुमुक्षु कल्पना का चित्र वहाँ, उस कमरे में, न था। वातावरण व्यवस्थित था, परन्तु सौम्य था। मृत एन्ड्री पर झुकी हुई माता की कारुणिक दशा का दृश्य, पिता की अन्यमनस्क, पीड़ाक्रांत सजीव-निष्प्राण मूर्ति, सब कुछ उस समय एक चित्रकार के चित्र की उपस्थित कल्पना थी। रोदन की उस लुन्ठित नीरवता का सजीव चित्र उसकी मार्मिक गाथा, उसका निःस्वर क्रन्दन! केवल गायन की ध्वनि के सफल आरोह और अवरोह में ही इतनी क्षमता है कि वह उसका हृदयग्राही वर्णन कर सके। किरलॉफ और उनकी पत्नी मौन थे, रोदन भी उस समय उनका साथ छोड़ कर चल चुका था। जीवन की उस काव्यमय कारुणिक परिस्थिति में वे अपने को इतना भूल चुके थे......इतना, कदाचित् वे उस वातावरण को भी भूल गये थे। ऐसा मालूम होता था; जैसे—वे अपने जीवन के स्वर्गीय दिनों को कल्पना के अधरों से चूम रहे हों—जवानी आई थी, और अब जा भी रही है; एक दिन प्रकृति ने उल्लसित

हृदय से उनकी गोद में एक बच्चा दिया था, और अब वह जा चुका था। शायद उस बच्चे के साथ-साथ उनकी संतति-भावना भी विदा ले चुकी थी। दो बीस और चार—डाक्टर जीवन की इतनी सीढ़ियों को पार कर बुढ़ापे की सफेदी की ओर, उन्मन हो देख रहा था; उसकी विषादग्रस्ता रुग्णा पत्नी भी पैंतीस की हो चुकी थी। एंड्री उनका एक-मात्र पुत्र ही नहीं, अन्तिम संतान थी।

दारुण पीड़ा के उद्वेलित क्षणों में, डॉक्टर अपनी पत्नी के स्वभाव के प्रतिकूल सचेष्ट रहने की चेष्टा किया करता था। पाँच मिनट तक चुपचाप खड़े रहने के बाद, शयनागार के बग़ल वाले कमरे में, जिसे वे भोजनालय के रूप में भी बरतते थे, चला गया। सिर झुकाकर, थोड़ी देर तक टहलता रहा और फिर दूसरे कमरे में चला गया।

यहाँ, उसने फिर वही सफेद मफ़लर और पीत-वर्ण मुख देखा।

'ख़ैर!'—एक निःश्वास खींचकर एबॉगिन दरवाजे के हैंडिल का सहारा लेकर खड़ा हो गया—'आइए!'—उसने कहा।

डॉक्टर जैसे स्वप्न देखते-देखते लौट पड़ा हो, एबॉगिन के वाक्य से जैसे उसकी चेतना-शक्ति लौट आई हो।

"मैं आप से पहले ही कह चुका महाशय, मैं नहीं चल सकता। .. क्या आपने सुना नहीं?'

'डॉक्टर, मैं पत्थर का नहीं बना हूँ...मैं आपकी परिस्थिति से भलीभाँति परिचित हूँ...मेरी हार्दिक सहानुभूति आपके साथ है!—अपना एक हाथ मफलर पर फेरता हुआ दयनीय वाणी से वह कह रहा था—'परन्तु, मैं अपने लिए तो आपको कष्ट नहीं देना चाहता...मेरी पत्नी

मर रही है ! यदि आपने उसका करुण-क्रन्दन सुना होता, यदि आपने एक बार भी उसका पीड़ित मुख देखा होता !—सच कहता हूं डाक्टर, तब आपको मेरी विकलता का अनुभव होता ! हे भगवन् ! और मैं सोच रहा था कि आप अन्दर तैयार होने गये हैं। डॉक्टर किरलॉफ, इस समय हमारे लिए समय का मूल्य बहुत है। आइए, आइए डॉक्टर,...मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ !'

'मैं नहीं जा सकता'—डॉक्टर के एक एक शब्द में दृढ़ता थी; वह हॉल की तरफ लौट पड़ा।

एबॉगिन ने उसके पीछे पीछे जाकर उसकी बाँह पकड़ ली।

'मैं जानता हूँ—वेदनाओं ने आपको आग्रस्त कर लिया है। परन्तु...मैं आपको किसी साधारण तकलीफ का इलाज करने के लिए नहीं कहने आया हूं...परन्तु आपको एक आदमी की जान बचानी है।'—उसके स्वर में किसी भिखारी की गिड़गिड़ाहट आ मिली थी—व्यक्तिगत पीड़ाओं की वेदना का अतुल भार, डॉक्टर...मनुष्य के जीवन से बढ़कर नहीं है।...मैं प्रर्थना करता हूँ, चलिए, मेरे साथ चलिए।...मनुष्यत्व के नाम पर !'

'परन्तु वह तो लकड़ी के दो सिरों पर जाकर चिपक गई है, मेरे भाई !'—किरलॉफ ने हिचकते हुए कहा—उसी......उसी मनुष्यत्व के नाम पर, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं, मुझे कहीं मत ले जाओ। मैं अपने पैरों पर मुश्किल से खड़ा हो पा रहा हूँ, और तुम मुझे मनुष्यत्व का नाम ले-लेकर व्यर्थ में डरा रहे हो। इस समय मैं कुछ भी नहीं कर सकता, मैं मजबूर हूं, मेरे भाई !......मेरा मस्तिष्क इस समय ठीक नहीं है;

और......और फिर मैं अपनी पत्नी को किस तरह से अकेला छोड़ कर जाऊँ ? नहीं......नहीं ।'

हाथ हिलाता हुआ किरलॉफ कमरे में घूमने लगा ।

'मुझ से मत कहो, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं. महाशय एवाँगिन, मुझे क्षमा कर दो । मैं जा नहीं सकता ।'—कातर वाणी में किरलॉफ प्रलाप-सा कर रहा था—'चिकित्सा-शास्त्र के तेरहवें भाग के अनुसार, मैं नियम-बद्ध हूँ, मुझे जाना ही पड़ेगा । यदि तुम मेरा हाथ घसीट कर मुझे ले चलो, तो मैं इन्कार नहीं कर सकता, तुम्हें इसका अधिकार है; लेकिन मैं तुमसे सच कहता हूं, इस समय मेरा ले जाना व्यर्थ ही प्रमाणित होगा ।......मुझे क्षमा कर दो ।'

'इतनी कातर वाणी में मुझ से बात-चीत कर मुझे लज्जित न कीजिए डॉक्टर ।'—एबॉगिन ने मर्मांतक आवेग में किरलॉफ के कन्धे पर प्रेम पूर्वक हाथ रखते हुए कहा—'आपका तेरहवाँ भाग और उसका नियम चूल्हे में जाय । आपको अनधिकार पूर्वक ले जाने की चेष्टा करने का अधिकार मुझे भी नहीं है ।......अगर आप चलिएगा तो अच्छा ही है; परमात्मा आपका भला करेगा । मैं आपकी इच्छाओं से नहीं, आपके हृदय से निवेदन करता हूँ !......एक युवती मृत्यु के मुँह में जा रही है ! आपके पुत्र की मृत्यु भी अभी ही हुई है, फिर आपही समझें, आप से बढ़कर इस दुःख का अनुभव और कौन कर सकता है ?'

उसके स्वर में कातरता थी, कंपन था । उसके मुँह से निकले हुए एक-एक शब्द किसी पाषाण हृदय को द्रवित कर देने के लिए यथेष्ट थे—चेतना-हीन, कम्पन-युक्त, रुदनमय, एक-एक शब्द तो क्या उसके

अक्षर-अक्षर में सजीवता, मार्मिकता का आवरण ओढ़ कर चंचल हो उठी थी। दग्ध हृदय के तप्त वाक्य गंभीरता के यत्र-तत्र बिखरे हुए विद्युत्-कणों के साथ मिल कर विश्व के वायु-मंडल को भी दयार्द्र बना सकते थे।

किरलॉफ चुपचाप खड़ा था। एबॉगिन के प्रभावात्मक शब्दों ने उसे पिघला दिया था, आह! अपनी समस्त वाक्-शक्ति को बटोर कर उसने टूटे हुए शब्दों में पूछा—

'क्या मुझे कहीं दूर जाना है?'

'अधिक नहीं, यही तेरह-चौदह मील के लगभग। मेरे पास एक अच्छा घोड़ा है। मैं आपको वचन देता हूं कि आप एक घंटे के अन्दर ही यहाँ लौट आवेंगे। केवल एक ही घण्टे में!'

एबॉगिन के इन वाक्यों ने डाक्टर को अपनी ओर विशेष रूप से आकृष्ट कर लिया—इतना अधिक!—कदाचित् मनुष्यत्व की दुहाई, और ईश्वर का नाम भी उसे इतना चंचल न कर सका था। एक क्षण तक चुपचाप खड़ा रहने के पश्चात्, एक मन्द उच्छ्वास के साथ उसने कहा—

'अच्छा......मैं चलूँगा।'—शीघ्रता-पूर्वक वह एक कमरे में गया, और एक क्षण के पश्चात् ही अपना ओवरकोट लिए हुए लौट आया। एबॉगिन की संतप्त आत्मा एक बार खिल उठी। और वे चल पड़े।

निर्जन पथ रात्रि की निस्तब्धता में अपनी जवानी के दिनों की याद कर रो रहा था। अन्धकार था; परंतु इतना नहीं, जितना कि डॉक्टर के हॉल में। और वे गाड़ी पर बैठ गये।

'हम लोग बहुत जल्दी ही पहुँच जायेंगे। सुनो! अरे लूका! तेज़ी से गाड़ी हाँक दो। बहुत तेज़, समझे!'

और वह जल्दी बढ़ चला। मौन धारण किये हुए नगर की मनोहर वनस्थली, और वहाँ के अच्छे-बुरे मकान सबको पीछे छोड़ती हुई गाड़ी आगे जा रही थी।

क़रीब-क़रीब रास्ते भर वे दोनों चुप-चाप बैठे रहे। केवल एक बार एबागिन ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा था—

'ओह! कितनी भयानकता! मनुष्य कभी भी उसको उतना प्रेम नहीं करता, जब कि वह आशा करता है कि सदैव ही उसके सन्निकट रहेगा; और......और जब उसे यह आशंका होती है कि वह उसे खो बैठेगा तब......, आह! तब वह कितना व्यग्र हो उठता है!'

और जब गाड़ी नदी को पार कर रही थी, किरलाफ़ अचानक ही पानी के कल्लोलित प्रवाह को देखकर, बड़बड़ा उठा—

'सुनिए! मैं एक क्षण के लिए जाना चाहता हूँ।'—उसके मुख पर चिन्ता की भाव-मुद्रा अंकित हो गई—'मैं अभी लौट आऊँगा। अपनी पत्नी के पास, सांत्वना देने के लिए, किसी को भेज दूँ। वह अकेली ही है।'

एबागिन ने उसका कोई उत्तर न दिया। गाड़ी नदी के बालुकामय तट पर आगे बढ़ती चली जा रही थी। किरलाफ सावधान हो गया। उसने एक बार चारों ओर देखा। रात्रि उतनी ही नीरव थी, और प्रकृति उतनी ही निस्तब्ध। धरित्री रुग्णा स्त्री के समान, भूत के स्वप्नों को विस्मृत करने का उपक्रम करती हुई, वर्त्तमान में शीत की अन्धकारमयी रात्रि को चूम रही थी।

और वे लोग निर्दिष्ट स्थल पर पहुँच गये थे। गाड़ी से उतरते हुए

एबागिन ने अपने मकान की खिड़कियों की ओर निहारा। प्रकाश छन कर बाहर आ रहा था।

'यदि कुछ हो गया तो......फिर मैं भी न बचूँगा।' – किरलॉफ के साथ वह हाल में घुसते हुए सोच रहा था। निस्तब्धताका साम्राज्य अपने चारों ओर देखकर उसने सोचा—'सब ठीक ही मालूम पड़ता है।'

इस बार, एबागिन के मकान में, दोनों ने दोनों को, लैम्प के प्रकाश में भली भाँति देखा था। किरलाफ लम्बा, और वदसूरत था। उसके कपड़े भी ठीक नहीं थे। उसकी मुखाकृति स्पष्ट बतला रही थी की वह असहिष्णु थी'। उसकी भावनाएँ चिन्ता-ग्रस्त, और शिथिल दिखलाई पड़ती थीं। उसे देखकर शायद हीं किसी को यह विश्वास होगा कि उसके पत्नी है, और वह अपने पुत्र की मृत्यु पर परिप्लावित होकर रो उठा था।

एबागिन की दशा ठीक उसके विपरीत थी। अपनी वेष-भूषा, अपनी मुखाकृति, और अपने वार्त्तालाप के ढंग से वह पूर्ण सभ्य प्रतीत होता था। वे ऊपर पहुँचे। वह चिन्तित हो बड़बड़ा उठा—

'कोई भी नहीं ?...अरे ! कोई भी नहीं बोलता !...हे भगवन् ! रक्षा करो।

वह डोक्टर को ड्राइङ्गरूम में ले गया। बिलासिता की समस्त सामग्री वहाँ पर सजी हुई थी। उसके सुगन्धित वातावरण में उसे छोड़ते हुए उसने कहा—

आप एक क्षण के लिए यहाँ ठहरिए। मैं अभी आता हूँ। उन्हें कह दूँ कि आप आगये हैं...।'

किरलाफ वहाँ बैठ गया। प्रकोष्ठ की विलासिता का बहु-मूल्य सामान, एक अपरिचित के मकान का वह कमरा, और वह विचित्र घटनावली, उस पर कुछ भी प्रभाव न डाल सके। आरामकुर्सी का सहारा लेकर वह लेट-सा गया; और कार्बोलिक एसिड से जले हुए अपने हाथों का निरीक्षण करने लगा। लाल आवरण ओढ़े हुए, प्रकोष्ठ का बहु-मूल्य लैम्प जगमगा रहा था; और दूसरी दीवार पर घड़ी टिक्-टिक् गति से, एक-एक क्षण को पीछे ढकेलती हुई कामुक स्त्री की भाँति युवक-क्षणों का आलिंगन करती हुई आगे बढ़ती चली जाती थी—शांति की खोज में; मृग-मरीचिका उसे आगे बढ़ती हुई अपने कर्त्तव्य का पालन करा रही थी।

निस्तब्ध ! वहाँ कोई भी नहीं बोल रहा था.. तब कुछ दूर पर एक कमरे में एबागिन को चीखते हुए सुना। पीड़ा-मयी खिजलाहट से अस्फुट स्वर में उसके मुँह से एक लम्बी 'आह' निकल गई थी, और फिर वही नीरवता। अपने हाथों की ओर कुछ देर के लिए देखना बन्द कर किर-लाफ उस दरवाज़े की ओर देखने लगा, जिधर से एबागिन गया था।

और द्वार पर उसकी मूर्ति दिखाई पड़ी। ओह ! उसमें अब कितना अंतर हो गया था !—आकुलता और चिन्ता की गम्भीर मलिनता उसके मुँह पर से अपनी छाप उठा चुकी थी। उसकी मुखाकृति, उसकी भाव-नाएँ एक सजग गम्भीरता का परिचय दे रही थीं—उसमें मानसिक पीड़ा का लेश भी नहीं था, और न थी किसी शारीरिक यातना की एकांत साधना की छाप। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे—उसके नेत्र किसी भयंकर पैशा-चिक प्रतिहिंसा की ज्वाला से जल रहे हों।

मुट्ठियाँ कसे हुए गर्दन झुका कर वह कमरे में घूमने लगा। उसके परिचलन में क्रूरता की मात्रा थी।

'धोका! मुझे धोका दिया गया!!'—उसके स्वर में किसी कारुणिक क्रूरता का आभास मिल रहा था—मैं लुट गया!...हिं...बीमार पड़ी थी, डाक्टर को बुलावने भेजा था!—यह सब किस लिए?...हूँ! समझा ...केवल उस पाजी एलेक्जेंडर के साथ भाग जाने के लिए ही तो! ओह भगवन्! मेरे प्रभु!!'

एबागिन आवेश में भरा हुआ था। नैराश्य और क्रोध की उच्छृंखल भावनाओं से लिपट कर फणीन्द्र की भाँति वेदनाओं का भार लादे हुए फुफकार रहा था।

'कितनी भारी धोका!...अच्छा, इतना सफेद झूठ क्यों? मेरे प्रभु! आह! मेरे साथ चालाकी क्यों खेली? मैंने उनका क्या बिगाड़ा था?'

अश्रु-दल उमड़ कर बह चला। हाय, उसे कितना दुःख था! डाक्टर साश्चर्य्य–मुद्रा से देख रहा था। वह उठा, फिर उसने पूछा—

कृपया मुझे शीघ्र ही बता दीजिए...रुग्णा कहाँ है?'

'रुग्णा! यहाँ कोई भी रोगी नहीं है। हः-हः-हः'—एबागिन सिसकियों के बीच में भीषण अट्टहास कर उठा। उसकी मुट्ठियाँ क्रोध से काँप उठीं—'वह रुग्णा नहीं थी डाक्टर, वह तो..., वह तो, एक चाल थी हः-हः-हः नीचता! पदाक्रान्त, मानव-स्वभाव की नारकीय प्रवृत्ति! दो शरीरों का उच्छृंखल, पापमय, उष्ण और शीतल आलिंगन!—डाक्टर, वह उसी के लिए तो गई है, उस पाजी के साथ। उसे अपने रोग का

निदान मिल गया डाक्टर!......अच्छा होता, इससे हजार गुना अच्छा होता कि वह मर जाती। मैं इसे सहन नहीं कर सकता ..उफ! उफ!! उफ!!!'

डाक्टर ने उसकी ओर आँख उठा कर देखा। उसके आग्नेय नेत्र जल-मग्न थे। डाक्टर ने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा

'मुझे बताओ तो भाई, क्या हुआ?'—उसके स्वर में आकुलता थी—'मेरा बच्चा मरा हुआ पड़ा है, मेरी पत्नी उस बड़े मकान में अकेली ही है। मैं मुश्किल से खड़ा हो पा रहा हूँ, आज तीन दिन हो गये, आँख नहीं झपी और यह सब क्या है? क्या मैं यहाँ किसी मज़ाक के लिए बुलाया गया हूँ? या आप मुझे लूटना चाहते हैं......मुझे कुछ समझ में नहीं आता!'

एबागिन उसे आश्चर्य्य, सचिन्त और उन्मन भाव से देखने लगा। ऐसा मालूम पड़ता था; जैसे—वह उस अपमान को सह नहीं सकता।

'मैं खुद नहीं जानता! मैंने उसे कभी भी नहीं समझा! वह रोज़ गाड़ी पर आता था, आज भी आया था। मैंने कभी भी नहीं जाना कि वह इसलिए आता था। आह! परमात्मा उन्हें समझे। मेरी कितनी बेइज्जती हुई है, इन्हीं लोगों के कारण तो मुझे यह सब कुछ सहना पड़ रहा है।'

डाक्टर ने उससे पूछा—तो आप मुझे क्यों लाये? मुझे आपके परिवार के इस अन्तरंग वातावरण से क्या प्रयोजन? मानवता की दुहाई देकर आप मुझे लाये थे, क्यों न? आपने मुझे परेशान कर डाला। आप उनसे लड़िए, इसका बदला लीजिए, कुछ कीजिए, मुझसे मतलब... परन्तु, क्या आपको यह उचित था कि ऐसे कठिन समय में मुझे इस प्रकार

कष्ट दें ? याद रखिए महाशय, अगर आप इन्सानियत की इज्जत नहीं कर सकते, तो, उसका मज़ाक़ भी मत उड़ाइए।

'इसका क्या मतलब डाक्टर ?'—एबागिन जैसे ऊँचे से गिर पड़ा, उसने पूछा।

'इसके मतलब ? इसके मतलब यह हैं कि आप किसी के साथ भी, घोर दुःख के समय, मजाक़ उड़ाने की चेष्टा न कीजिए। मैं डाक्टर हूँ। मेरे महत्व का आपको सम्मान करना चाहिए। परन्तु आपको किसी मनुष्य को इस तरह धोका देकर लूटने का अधिकार किसने दिया है ?'

'लेकिन आप यह कह क्या रहे हैं ?'—एबॉगिन के मुखपर आश्चर्य और क्रोध के भाव अंकित थे।

'हाँ...ठीक, मैं ठीक कहता हूँ। आप मेरे घर पर, इस समय घोर दुःख आया जान कर, मुझे मानवता की दुहाई दे, इस पागलपन की गाथा का गवाह बनाने को यहाँ ले आये।—क्रोधावेग में टेबुल पर घूँसा मारते हुए डाक्टर ने कहा 'लेकिन किसी अभागे के दुर्भाग्य' का मज़ाक़ उड़ाने का अधिकार किसने दिया ?'

'इस समय आप आपे में नहीं हैं, डाक्टर'—एबागिन ने कहा—'आप क्रूर हो गये हैं। मैं भी तो आप ही की तरह दुखी और...'

'दुखी !'—किरलाफ़ के अधरों पर एक घृणा-मिश्रित हास्य अंकित हो गया। उसने कहा—आप इस शब्द को न कहिए, इसके कहने का अधिकार आपको नहीं है। आपकी ज़बान पर आकर यह शब्द भी कलुषित हो उठता है।...हिं...मानवता के नाम पर !'

'इस वाक्य को बार-बार दुहरा कर आप मेरा अपमान न कीजिए

डाक्टर'—और उसका हाथ जेब में जाकर कुछ सिक्के उठा लाया, उन्हें मेज़ पर रखते हुए उसने कहा—'यह आपके समय नष्ट करने का मूल्य है डाक्टर !'

'अपमानित होने की फ़ीस नहीं ली जाती।'—उन्हें ज़मीन पर फेंकते हुए किरलाफ़ ने घृणा के साथ उत्तर दिया।

आमने-सामने खड़े हुए दो पीड़ित प्राणी, क्रोध और अपमान से जलते हुए, दो दग्ध हृदय नासिकापुटों से फुफकार फेंकते हुए, आग्नेय नेत्रों से वे एक दूसरे को देख रहे थे। फिर किरलाफ़ ने एबागिन से कहा—

'क्या आप कृपा करके मुझे घर पहुँचा देने की व्यवस्था कर देंगे ?'—डाक्टर ने झल्लाये हुए स्वर में कहा।

एबागिन ने तेज़ी से घंटी बजाई ; लेकिन उसे कोई उत्तर न मिला। उसने फिर बजाई, और फिर गुस्से में आकर फ़र्श पर पटक दी। घंटी चीत्कार कर उठी, और नौकर उसके सामने आ गया।

'तुम लोग अब तक कहाँ थे ? भगवान् तुम्हें समझे !'—एबागिन गरज उठा। क्रोध ने उसके मस्तिष्क को आज भली प्रकार से आक्रान्त कर लिया था—तुम लोग अब तक थे कहाँ ? जाओ, इन महाशय के लिए एक गाड़ी लाओ, और मेरे लिए भी !......ठहरो ! कल तुम सब लोग यहाँ से चले जाओगे, नीचो !—मैं दूसरे नौकर रखूँगा।'

नौकर सिर झुकाकर चला गया। थोड़ी ही देर में किरलाफ़ के लिए गाड़ी आ गई, और वह चल दिया। उसका समस्त शरीर अपमान और क्रोध की आग में भस्म हो रहा था।

रात्रि की नीरवता में धड़-धड़ करती हुई गाड़ी जा रही थी, उसके घर

की ओर; और तभी उसने देखा—एक गाड़ी उसे पीछे छोड़ती हुई आगे बढ़ गई। उसने देखा, घृणा की प्रति-मूर्ति बना हुआ एबागिन उसे हाँक रहा था।

और रास्ते भर किरलाफ़ को अपनी संतप्त पत्नी और मृत एन्ड्री का ध्यान न आया। वह एबागिन, उसकी पत्नी और उसकी गाथा पर ही आलोचना करता हुआ चला जा रहा था। वह घृणा करता था, उन सबसे। वह उन्हें मानव नहीं दानव समझता था।

समय निकल जायगा ; किरलाफ़ का दुःख भी क्षण प्रतिक्षण विश्व के वायु मण्डल में, कण-कण होकर विलीन हो जायगा ; परन्तु यह घटना— अपमान और अमानवता की कहानी—कदाचित्, उसके शरीर के साथ तब तक भी लिपटी रहेगी, जब कि उसकी आत्मा इस विश्व से संबंध विच्छेद कर ईश्वर के दरबार में, न्याय के दिन तक, विश्राम करने के लिए न चली जायगी।

बिल्ली के बच्चे

नवोर्मिल आभा के प्रस्तरण पर सोते हुए स्वप्निल साम्राज्य के सर्वस्व, उन छोटे-छोटे 'वान्या' और 'निना' के उस शैशव में केवल सुख के अतिरिक्त और था ही क्या ? वान्या शैशव के ६ बसन्तों का अनुभव कर चुका था,

और निना चार वर्ष की थीं ; वह बड़ा भाई था और निना उसकी छोटी-सी बहन ।

सूर्य की स्वर्णिम रश्मि ने इठला कर उनसे कहा—आओ।···उठो न...चलो खेलें !...परन्तु, वे तो सोते ही रहे, उन्हें उसमें सुख था।

नर्स आई। उसने उन्हें गुदगुदाकर कहा—छि:—छि: ! अभी सो ही रहे हो।...देखो न, जितने राजा बेटे होते हैं, वे तो अब तक जलपान भी कर चुकते हैं...और एक तुम लोग हो।

लेकिन वे तो सोते ही रहे।

नर्स ने उन्हें फिर गुदगुदाया।

उनींदी आँखों को जरा-सा खोलकर निना ने कहा—आया ! चा...!

वान्या इसी एक सूत्र को लेकर निना को फटकारना चाहता था।...और वह उसके इस चाँखने पर फटकारने वाला ही था कि दूसरे कमरे से माता की आवाज आई—बिल्ली को आज दूध जरूर पिला देना उसने बच्चे दिये हैं !—वे दासी को आदेश दे रही थीं।

दोनों ही—वान्या और निना—दोनों ही सहसा चौंक पड़े। उन्होंने एक दूसरे को प्रश्नात्मक ढंग से देखा। वे कितने प्रसन्न हो उठे ! उनमें कितनी स्फूर्ति आगई थी ?—प्रस्तरण से उछल कर, लालसा उन्हें पाकशाला की ओर दौड़ाती हुई ले गई—नंगे पैर, नाइट-ड्रेस (रात की पोशाक) में ही पागल-से बना कर।

तिपाई के नीचे, छोटे-से बक्स में झाँक कर उन्होंने देखा—एक ! दो !! तीन !!! तीन-तीन बच्चे। सिकुड़े हुए, एक दूसरे से चिपक कर बैठे थे ! भूरे-भूरे रोम, नीली-सीं बन्द उनकी आँखें थीं। कूँ कूँ करते

हुए मुन्ने-मुन्ने बिल्ली के बच्चे, तीन-तीन !!! और उस समय बिल्ली के कठोर हृदय में उठती हुई उसकी मातृभावना उसे उनके पास ही, उनकी रक्षा के लिए बैठाये हुए थी।

बच्चों ने अपने छोटे-छोटे हाथों से उन्हें बक्स के बाहर निकाला और फर्श पर रख दिया। अपलक नेत्रों से, उन्होंने चेष्टा की, बिल्ली की भावनाएँ पढ़ लेने की...परन्तु वह न तो गुर्राई, न उनकी ओर झपटी। उसके नेत्रों से प्रेम और प्रसन्नता की ज्योतिर्मयी आभा निकल रही थी।

आपने अनुभव किया होगा।...मैं बतलाता हूँ—अबोध शिशुओं के प्रभावशाली श्रेष्ठ शिक्षक होते हैं, उनके घर में पले हुए निर्बोध जानवर। ये उन्हें, खेल ही खेल में, क्षमा, सहन-शीलता और सरलता का पाठ पढ़ा देते हैं।...आप ही बोलिए, क्या आप अपने बड़े-बड़े बालोंवाले सुन्दर झबरे कुत्तों को, लाल-पीलो-कालो रंगबिरंगी चिड़ियों को, मुर्गों को, बिल्लियों को, जिन्हें अपनी प्रसन्नता के लिए सताते थे, जिनकी दुम को घसीट-घसीट कर हम प्रसन्न होते थे, और उन्हें पीड़ा होती थी—आप ही कह दें, क्या आप उन्हें अब तक भूल सके हैं? उन्होंने हमें जो मूक शिक्षा दी है, वह 'कार्ल-कार्लविच' के रूखे एवं लम्बे-चौड़े शिक्षाप्रद व्याख्यानों से, कहीं अधिक प्रभावशालिनी है? हम आज उन्हें भूल गये हैं, और हम अपनी संरक्षिका के उन प्रयोगों को भी भूल चुके हैं, जिसमें उसने हमें यह प्रमाणित कर दिखलाया था कि पानी 'हाइड्रोजन' और 'आक्सिजन' के सम्मिश्रण से बनता है।...परन्तु, हम अपने उन पालतू जानवरों द्वारा दी हुई शिक्षाओं को आज तक नहीं भूल सके।

'कितने मुन्ने-मुन्ने !'—बाल-सुलभ प्रसन्नता की पराकाष्ठा तक पहुँच कर निना हँसी और कहने लगी—'यह तो बिलकुल चूहों जैसे हैं !'

'एक, दो, तीन !'—वान्या ने हिसाब लगाकर कहा—'एक मेरा, एक तुम्हारा, और एक ?..... एक और किसी को दे देंगे।'

वात्सल्यमयी बिल्ली ने चुचकार कर कहा—मर्रम...मर्रम !

वे उन्हें बड़ी देर तक देखते रहे। उन्हें पुचकारते थे, उनके शरीर को प्यार से थपथपाते थे, उन्हें इतने से भी सान्त्वना न हुई। अपने लम्बे से गाऊन में उन्हें छिपा कर वे ले चले।

'ममा, बिल्ली ने बच्चे दिये हैं !'—वे प्रसन्नता से चीख उठे।

कमरे में बैठी हुई उनकी माता किसी अपरिचित पुरुष से वार्तालाप कर रही थी। उसने देखा—न तो उन्होंने कपड़े ही बदले हैं, न मुँह ही धुलवाया है...वह मारे क्रोध के खीभ उठी—अपने कपड़े बदलो जाकर।... निर्लज्ज कहीं के !......जल्दी जाओ, नहीं तो पीटूँगी।

अपने खिलवाड़ के आगे, उन्होंने माता की आज्ञा पर कोई ध्यान न दिया। बच्चों को फ़र्श पर रख कर वे उनके साथ खेलने लगे। बिल्ली उनके साथ ही फिर रही थी।...परिचारिका आई, उन्हें उठा कर ले गई हाथ-मुँह धोना, प्रार्थना करना, जलपान, कपड़े बदलना ! ओह !—वे शीघ्रातिशीघ्र इन सब कामों से छुट्टी पाकर बिल्ली के बच्चों के पास दौड़ जाना चाहते थे।

उस दिन वे सब कुछ भूल गये थे—खाना, पीना, मित्र, खेल-खिलवाड़—सभी कुछ। वे थे और उनके बिल्ली के बच्चे। आप यदि उन्हें बहुत-सी मिठाई देकर, अथवा तीन-चार हजार पेनी भी देकर उनसे बिल्ली के वे छोटे-छोटे बच्चे माँगते, तब भी, मेरा विश्वास है, वे आपके

प्रस्ताव को तत्क्षण ही ठुकरा देते। उन्हें पाकर उन्हें, जैसे किसी भी आमोद की लालसा नहीं रह गई थी। मिठाई के छोटे-छोटे टुकड़े, फल, दूध, सभी कुछ तो वे उनके लिए लाये थे; परन्तु कमबख्त बिल्ली ने उसे झपट कर खा लिया।

'मेरी राय में तो इनके अलग-अलग मकान बना दिये जायँ'—वान्या ने गम्भीरता-पूर्वक प्रस्ताव किया—'...और बिल्ली केवल कभी-कभी उनसे मिल आया करेगी, बस!...

हैट रखने के तीन डिब्बे पाकशाला के तीन कोनों पर रख दिये गये। वे उन तीनों के घर थे।...परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बच्चों को अभी अपनी माता की संरक्षता में रहने की आवश्यकता थी; क्योंकि थोड़ी देर पश्चात् जब वे लौट कर आये तो उन्होंने देखा, वे फिर अपनी माँ के पास बैठे हुए थे। उन्हें इस पर आश्चर्य होने लगा—कदाचित् बिल्ली उन्हें उठा लाई होगी!

'अच्छा निना, एक बात तो बताओ......'—निना उत्सुकतापूर्वक उसका मुख निहारने लगी...—'यह बिल्ली तो उनकी माँ है,...और फिर बाप...?'

'हाँ, उनके पिता फिर कौन हैं?'—निना ने भी कह दिया।

'भाई, पिता बिना तो ये कभी जीवित रह नहीं सकते!'—वान्या बोला।

तब वे दोनों ही इस जटिल समस्या को हल करने बैठे।...

'मैंने एक बात सोची है।'—वान्या ने कहा।

मुट्ठी से ठुड्डी को पकड़े गम्भीरता-पूर्वक इस प्रश्नपर विचार करती हुई लिना ने केवल अपनी आँखों को उसके मुखमण्डल पर गड़ा दिया।

'वह जो घोड़ा नहीं है, लाल-लाल ! जिसकी दुम टूट गई है।...'

'परन्तु वह न जाने कहाँ पड़ा हुआ है ?...शायद फेंक दिया गया।'

'नहीं-नहीं फेंका नहीं गया।...मैं जानता हूँ।...बस कुर्सी के नीचे पड़ा है।'—वान्या ने बतलाया।

घोड़ा निकाला गया। उसे झाड़ा-पोंछा गया, फिर वे उसे बच्चों के सामने रख आये।

अब देखना चाहिए, यह बच्चे अपने पिता के साथ, कैसा व्यवहार करते हैं।'

...उस दिन उनका एक छोटा-सा संसार था, और उसमें थे—केवल वान्या, लिना और बिल्ली के तीन बच्चे। उन्हें अन्य किसी भी वस्तु की अभिलाषा न थी ! उनकी प्रसन्नता का वारापार न था।

भोजन के कुछ क्षण पूर्व एक बच्चे को पापा' की लिखने पढ़ने वाली टेबुलपर बिठा कर, वान्या उसका खिलवाड़ करने लगा। वह रेंगा—पापा के लिखने का कागज नष्ट हो गया'।

प्रकोष्ठ में आते हुए पिता ने क्रोध से कहा—यह सब क्या है !

'यह...बिल्ली ने बच्चे दिये हैं, पापा !"

'अच्छा ठहरो, अभी बतलाता हूं तुम्हारे बिल्ली के बच्चे !...इन्हें यहां क्यों लाये ?...मेरा तमाम कागज नष्ट कर दिया !'

वान्या को इस असद् व्यवहार पर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था। उसने

सोचा था—पापा···। पापा ने उसके कान पकड़ते हुए चिल्ला कर कहा—स्टीपेन !...इस सब कूड़े को नदी में बहा आओ।

वान्या और निना पर मानो वज्रपात हो गया ......उनके बिल्ली के बच्चे नदी में बहा दिये जायँगे ?

'पानी में जब वे फेंक दिये जायँगे—तैरना तो जानते नहीं,—डूब जायँगे, हां, अवश्य ही डूब जायँगे। हाय, कैसे चिल्यायँगे तब वे !'

कल्पना करते ही वे रोने लगे। बहुत रोये; तब पिता ने उनको घर में रखने की स्वीकृति दे दी।···परन्तु, अब वान्या और निना उनके पास खेलने नहीं जासकते थे।

उस दिन, दिन भर वे रोते और दंगा करते रहे, और अपनी माता से भी रूठे रहे। सायंकाल के समय जब उनके चाचा 'पेट्रुशा' ने घर में प्रवेश किया, उन्होंने अपने पिता के उस असद्व्यवहार की बात उनसे भी कह दी।

'चाचा !'—उन्होंने उनसे प्रार्थना की—'···ममा से कह कर उन्हें दूसरे कमरे में रखवा दीजिए।' ··'अच्छा !'

मुस्कराते हुए चाचा ने कहा—अच्छा।

पेट्रुशा कभी-कभी उन लोगों से मिलने आया करते थे, और उनके साथ उनका भूरा—झबरे बालों वाला—कुत्ता 'नीरो' भी।

अब वे सोचने लगे—अच्छा यदि नीरो को उनका बाप बना दिया जाय, तो कैसा हो ?

'हाँ, अच्छा तो है। वह घोड़ा तो खिलौना है। नीरो सचमुच का, जिन्दा बाप होगा।'

— और वे प्रतीक्षा में थे, जब पापा ताश खेलने बैठ जायें, और ममा भी…तब, नीरो को वहाँ ले चला जाय।

'नीरो गया कहाँ ?'—निना ने पूछा।

'यहीं कहीं होगा।…आ जायगा।'

वे दोनों उस सुखद क्षण की प्रतीक्षा में बैठे।…और वह समय आ ही गया।

'चलो'— वान्या ने अपनी बहन से कहा।

वे कुर्सी से उतरे। ममा खेल में दत्तचित्त थीं, और पापा भी…।'

स्टीपेन वैसे ही कमरे में आया, उसके हाव-भाव में आर्द्रता थी, वह जैसे उस समय भयभीत-सा हो रहा था—

'मैडम !…मुझे क्षमा कीजियेगा।….. नीरो बिल्ली के बच्चों को खागया……।'

उस दिन वान्या और निनाके लिए यह दुःख-सम्वाद कितना भारी आघात था !……आप ही सोचें।

ममा ने उसकी ओर देखा। उसने फिर कहा—जी, वह तो सीधा वहाँ घुसता ही चला गया।……मैं वहाँ था नहीं, और…और……।

बच्चों को विश्वास था कि पापा और ममा, सब लोग, नीरो को पीटेंगे और घर से निकल देंगे; परतु, वे तो उसे थपथपाते हुए, उसकी भूख पर आश्चर्य प्रकट कर रहे थे, हँस रहे थे।

…और बिल्ली !—प्रत्येक प्रकोष्ठ के प्रत्येक कोण को देखती हुई दयनीय वाणी से कर रही थी – म्याऊँ !—माता के शुद्ध अंतःकरण से

वात्सल्य की लहर उठ रही थी—म्याऊँ! म्याऊँ!!—माँ अपने बच्चों को खोज रही थी।

घड़ी ने दस बजाये। माता ने उन्हें सो जाने की आज्ञा दी।

घर भर आमोद में व्यस्त था, हँस रहा था; और शय्या पर पड़े हुए वे दो छोटे छोटे बच्चे रो रहे थे—बच्चों के बिना उनकी बिल्ली को कितनी पीड़ा हो रही होगी। वे रो रहे थे, नीच नीरो ने उनको चबा डाला, और उसे कोई सजा नहीं ?...... वे रो रहे थे !......वे छोटे-छोटे बच्चे !!

शराबी

'मैं सच ही कहता हूँ ; तुमसे झूठ न बोलूँगा।...मैंने आज कुछ अधिक मात्रा में चढ़ा ली थी। तुम देखते हो न, कितनी गर्मी पड़ रही है !—और ऋतु में उष्णता के इस असीम प्रवाह ही ने तो मुझे कुछ बोतलें पी जाने के लिए बाध्य किया। मुझे क्षमा कर दिया न ?—बोलो !'

जीवन के अनुभव को बुढ़ापे की सफेदी में छिपाये हुए, विभिन्न भावनाओं की सैकड़ों रेखाओं युत, 'क्लीनशेव्ड' मुखमण्डल पर बिखरे हुए स्वेद-बिन्दु !—जैसे वे उसके साक्षी हों—वृद्ध 'मुस्तफ़' ने कोट की जेब से रुमाल निकाल कर उन्हें पोंछ लिया।

'मैं तुम्हारे पास आया हूँ, बेटे, जानते हो न, मेरे लाल !'—आशा और आवेदना की उर्मिल-ज्योति उसके झुर्रीदार गालों पर पड़ी हुई सिकु-

द्दन से प्रदीप्त थी—'...मैं...मैं...मुझे तुमसे एक आवश्यक कार्य है !... मुझे...मुझे......देखो अपने इस बूढ़े बाप को क्षमा कर दिया न, बोरिन्का, तुमने ?......मुझे......तुम मुझे अ...तुम मुझे दस रुबल दे सकते हो ?...मैं तुम्हें मंगलवार तक दे दूँगा।''''''तुम तो समझते हो, कल मुझे अपने कमरों का किराया दे देना चाहिए था''''''परन्तु वहाँ रुपये का प्रश्न हल करना था न......और तुम तो जानते हो न, लाल मेरे,'''मेरे पास एक पाई तक नहीं, फूटी कौड़ी भी !—न...हीं !'

स्मृतियों की उखड़ी हुई आहों को भविष्य के अन्तरङ्ग में भरने का प्रयास करते हुए, नीरवता के प्राङ्गण में वह कुनमुनाया और फिर घर के अन्दर जाकर वह वृद्ध पिता की याच्य वस्तु को दो उँगलियों के सहारे पकड़े हुए लौट आया। मुस्तँफ़ ने नोट को जेब में अचिन्त्य भाव से रखते हुए उससे कहा —

'और कहो ! कुशल से रहे न इधर ?...हाँ, हमें एक दूसरे से मिले हुए तो जैसे कई युग बीत गये।

'जी हाँ, बहुत दिवसों से आपके दर्शन नहीं किये थे।—बस, ऋषि-जयन्ती पर ही मिले थे उसके पश्चात्...फिर...कदाचित् नहीं।'

'पाँच-छः बार इच्छा हुई कि तुम से मिलूँ; परन्तु अवसर ही न मिला... जीवन के अवशेष का पतन...पतन...!...परन्तु... मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, बेटा, मैं बड़ा असत्यभाषी हूँ।—बारिन्का, लाल मेरे, मुझ पर कभी भी विश्वास न करना।'''मैं उसके योग्य ही नहीं !—मैंने तुम्हें अभी वचन दिया है, तुम्हारे ये दस रुबल मंगलवार तक लौटा दूँगा।—परन्तु क्या तुम्हें उस पर विश्वास है ?—बेटा, मेरे एक अक्षर का भी विश्वास

मत करो। मैं तुम से सत्य कहता हूँ! दिन भर मैं करता ही क्या हूँ—आलस्य और प्रमाद में अपने श्वास की एक-एक गति को भूत के नैपथ्य में ढकेल कर, झूठ बोलना, शराब पीना, और इस विचित्र वेश-भूषा में अपने जर्जर मदिरा-ग्रस्त शरीरको छिपाये हुए सड़कों पर भटकना। बस!—परन्तु, तुम मुझे क्षमा कर दोगे न? मैंने लड़की को तीन बार तुम्हारे पास भेजा था—रुपये के लिए ही। मैंने तुम्हें कितने ही पत्र भी लिखे थे—बस उसी के लिए। इन रुपये के लिए मैं तुम्हे धन्यवाद दूँ?···क्या दूँ?... पत्रों में मैंने न जाने कौन-कौन-से बहाने किये थे...तुम उन सब पर विश्वास न करना।...वह सब झूठ था!......मैं तुम्हें इस प्रकार से लूटा करता हूँ।—सच कहता हूँ, कभी-कभी यह विचार मुझे नरक-यातना-सा पीड़ा-मय बना देता है।......तुम्हारा पिता...यह बदमाश अपनी यह काली सूरत केवल तभी दिखाता है, जब उसे पैसों की आवश्यकता होती है!... मुझे क्षमा कर दो, बारिन्का, बेटा,...इस पगले मन की सभी उच्छृंखल भावनाओं को मैं तुम्हारे सम्मुख स्पष्ट कर देता हूँ। तुम्हारे देवोपम सौम्य मुख को अपने सम्मुख देख कर न जाने क्यों, मैं झूठ नहीं बोल सकता।'

एक क्षण की गम्भीर नीरवता के पश्चात्, एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए, वृद्ध ने कहा—

'तुम मुझे एक गिलास शराब पिला सकते हो, भाई?...मैं 'बियर' ही पी लूँगा।'

आज्ञाकारी बालक-सा बारिन्का तत्क्षण ही उठ कर भीतर चला गया, और दूसरे ही क्षण नौकर ने आकर बोतल का काग खोल दिया।

पात्र का आसव पीकर जैसे उसमें नवीन स्फूर्ति आगई थी। उसने कहना आरम्भ किया—

'कल मैं घुड़दौड़ में गया था।...पगली भावनाओं की तारतम्य-वीथि में अपने को उलझा कर मैंने...तुम देख रहे हो न, मैंने ही, तुम्हारे शराबी पिता ने ही,...हाँ तो मैंने एक घोड़े पर तीन रुबल का एक नोट लगा दिया।...और फिर मैं जीत गया। बत्तीस रुबल मिले।...बुढ़िया मुझे सर्वदा वहाँ जाने से रोकती है; परन्तु मैं अवश्य जाता हूँ।...मुझे उससे प्रेम है।...'

बारिन्का कमरे में टहल रहा था। उसके पिता ने गले का कफ साफ़ करने के लिए, एक क्षण के लिए अपनी कहानी रोकी। वैसे ही वह उससे कहने लगा—

'पापा! कल मैं अपने लिए जूते की जोड़ी लाया था।...परन्तु वह मुझे छोटी मालूम पड़ रही है। शायद आपको ठीक आ जायगी।... आप पहन डालिए।'—और बिस्तर के नीचे से नये बूट निकाल कर उसने पिता के सम्मुख रख दिये। अपने पुराने जूते खोल कर मुस्तफ़ नये पहनने लगा। उसे ठीक आ गये।

'अच्छा, मैं ही इन्हें पहनूँगा।...मंगल को मेरी पेन्शन के रुपये मिलेंगे—उसी दिन दे दूँगा। परन्तु...परन्तु...मैं फिर झूठ क्यों बोला?' वेदना-ग्रस्त वाणी से वह कहने लगा—'झूठ...फिर झूठ!...आह! तुम भी मेरे लिए झूठ बोले, बेटा?...यह जूते तुम्हें छोटे होते हैं?...अथवा तुम्हारा हृदय महान् है।...मैं समझता हूँ, बेटा!...मैं अनुभव करता हूँ!'

'तो आप नये कमरे में आ गये, पापा ?'—बाँरिन्का ने प्रसङ्ग परिवर्तन की इच्छा से कहा।

'हाँ भाई, नये कमरे में ..प्राय: प्रत्येक मास हम उन्हें बदल देते हैं।...जैसे वृद्धा स्त्रियाँ कभी किसी स्थान पर निश्चित होकर नहीं बैठ सकतीं।'

'मै आपके पुराने निवास स्थान पर गया था...तभी मुझे इसका पता लगा।...आप मेरे साथ गाँव चलिए, पापा !—आपके स्वास्थ्य को स्वच्छ वायु की आवश्यकता है।'

निराशामयी भावना में लिपटे हुए वृद्ध मुस्तँफ़ ने कहा—'परन्तु जब वह बूढ़ी मुझे छोड़ेगी तब न ! कम-से-कम सौ बार तो तुमने ही मुझे उस महामाया के मायाजाल से मुक्त करने की चेष्टा की होगी।...मैंने स्वयं चाहा, प्रयत्न किया......ऊँह—छोड़ो इस पचड़े को। जानते हो न 'मेरी बरबादियों के सदके, मुझे बरबाद रहने दे।'—इस जीवन में मेरा उत्थान ? असम्भव ! नितान्त...अच्छा, अब चला...रात्रि पार्श्ववर्तिनी हो चली है।'

'यदि एक मिनिट के लिए ठहर सकें।...मैं भी आपके साथ ही नगर तक चलूँगा। मुझे कुछ काम है।'

प्रकृति के अन्धकार में, मानव निर्मित अप्राकृतिक आलोक के सहारे वे नगर की ओर जारहे थे।

'मैं जानता हूँ, बारिन्का, पतन मुझे लालसाओं की प्याली पिला कर, अन्धकार के गर्भ में यातनाओं का समूह खोजने भेज रहा है। मैं त्वरित आवेग में जा रहा हूँ, जाता भी हूँ।'—वात्सल्यमयी भावनाओं ने वृद्ध पिता

की रसना को तालू से सटा दिया था—'मेरे बच्चे! नरक-सा नारकीय उनका राक्षस-पतित पिता! आह! प्रकृति का कितना भीषण शाप था उन पर।...मैं तुम्हें देख कर झूठ नहीं बोल सकता। शराब के नशे में चूर अपना निर्लज्ज चेहरा दिखा कर अभी मैंने तुमसे रुपया लिया है। तुम्हारे भाइयों से भी ऐसे ही माँग लेता हूँ।...कल कुछ पड़ोसी मेरे घर आगये थे। मैंने उनके साथ शराब पी। फिर...फिर तुम्हें गालियाँ दीं. लाल मेरे तुम, मेरे बच्चे, तुम। आह! कितने सुशील हो तुम लोग। कितना सौभाग्यशाली हूँ मैं, तुमको पाकर।...! आह परमात्मा तुम्हारी लाखों बरस की उमर करे। फलो-फूलो बेटा!...और अपने इस बूढ़े बाप...'

'हाँ, पापा अब कुछ और बात कीजिए।'

'भगवान्! भगवान्! कितने सुशील मेरे बच्चे हैं।'—भावावेश में पापा ने कुछ सुना ही नहीं, वह अपनी तो सुनाता ही रहा—'कितने सुशील! कितने पिता-भक्त! परन्तु मैं उनका पिता कहलाने के योग्य नहीं हूँ। उहुँः...सचमुच नहीं।'

विक्षिप्त वृद्ध कहता ही रहा—भगवान् तेरी माया! अमूल्य उपादेय, सर्वोत्तम, देवोपम...! मेरे बच्चे! मेरे तीनों बेटे...सुन्दर, विद्वान्, सुशील, आज्ञाकारी, रा...आह! कोई इन हीरे-पन्ने ऐसी संतानों का पिता होकर अपना सीना गर्व से क्यों न फुला ले।...परन्तु मैं! मैंने तुम लोगों को बरबाद कर दिया। धोखेबाज़, शराबी, स्वार्थी...। हाय री स्वार्थपरता! मैं तुम्हें कितना कष्ट देता हूँ! कितना सताता हूँ!!...और तुम, मेरे बच्चे, तुम सब कुछ सहन कर लेते हो। तुम्हें अपनी अस्वस्थता के झूठे पत्र लिखता हूँ और तुमसे रुपया माँगता हूँ।...परन्तु किस लिए? जानते

हो ?—शराब, शराब...शराब के लिए ! और तुम जानते हुए भी मेरी प्रसन्नता के लिए तत्क्षण ही रुपया दे देते हो।...'मिशा' !—वह भी कितना भोला और पितापालक है।...अभी...अभी, इसी गुरुवार को शराब पीकर, मैले कपड़ों में, मैं उसके दफ्तर पहुँच गया। वहाँ और भी क्लार्क थे, काम से आये हुए बहुत-से मनुष्य खड़े थे। हेड-क्लार्क का पिता, मैं वहाँ पहुँचा।—उसके लिए कितने अपमान की बात थी।—फिर भी वह मुझे देखकर मुस्कराया, कुर्सी छोड़ कर खड़ा हो गया—जैसे कोई खास बात थी ही नहीं—यही नहीं, उसने अपने इस नीच पिता का दूसरों से परिचित कराकर मेरा मान बढ़ाया और अपना अप...। उस दिन वह मुझे अपने घर ले गया, खिलाया पिलाया और......।

'फिर अपने भाई साशा को भी देखो। कर्नल की कन्या से उसका विवाह हुआ है। इतना बड़ा आदमी।...परन्तु कुछ नहीं, गर्व छू भी नहीं गया। विवाह किया। सबसे पहले मेरे पास अपनी पत्नी-सहित आशीर्वाद ग्रहण करने आया।...आह ! मेरा बच्चा ! ईश्वर उसे सदैव सुखी रक्खे।

वृद्ध की झुर्रीदार आँखों से आनन्दाश्रु ढलकने लगे ; परन्तु वैसे ही वह हँस भी पड़ा, फिर कहने लगा—मैं उसे कहनी-न-कहनी सब सुना जाता हूँ; लेकिन वह बड़ा आदमी फिर भी सब कुछ चुपचाप सुन लेता है।

'साशा बड़ा अच्छा मनुष्य है।'—वारिन्का ने कहा।

'अनुपम ! अद्वितीय !!...एक वही क्यों ? तुम सब...तुम सभी...तुम, मिशा, साशा, और सोनिया...सभी। आरम्भ से ही, सदैव, मैंने तुम्हें पीड़ा पहुँचाई है, अपमान किया है, अवहेलना की है,...मैंने तुम्हें

कभी सुख दिया ही नहीं।—और आज !—आज तो मैं अपने जीवन की अनुभूति को पतन के शिलाखण्ड के नीचे दबाकर, मृत्यु के मौखिक वाद्य को कानों के पास गुनगुनाते हुए सुना करता हूँ।...जब तुम लोग केवल शिशुमात्र थे, जब तुम्हारे जीवन का भविष्य तुम्हारे इस नीच पापा के हाथ में था—क्या मैंने तुम लोगों को तब भी कोई सुख दिया? मुझे याद है, रात्रि की बहुत-सी अँधेरी घड़ियों को क्लब में बिता कर मदिरा के मद में मानव-जीवन की महत्ता को भुला कर, जब मैं आया करता था।...तुम्हारी माता—परमात्मा उसकी आत्मा को स्वर्ग में शान्ति प्रदान करे! आह! मैंने बेचारी को जीवन भर कष्ट ही दिया।...कभी सुख नहीं।...और जब तुम लोग दिन भर के पश्चात् भूखे-प्यासे-थके स्कूल से लौटते थे और मैं सोता होता था—तुम्हें मेरे जाग उठने तक भोजन की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।...परमात्मा...परमात्मा ने तुम ऐसी देवतुल्य संतानों का पिता मुझे क्यों बनाया?—मैं कदापि उसके योग्य न था। मुझे तो...मुझे तो...अरे, गाड़ीवान! रोको।'

सामने एक मदिरालय था। वह उसीमें चला गया, और लगभग आधा घण्टे पश्चात् लौट कर आगया।

'आजकल सोनिया कहाँ है?'—उसने प्रश्न किया—'वहीं बोर्डिङ्ग—स्कूल में न?'

'जी नहीं। गत मई मास से पढ़ाई समाप्त कर अब वह चाची के पास रहती है।'

'क्या?'—वात्सल्य की तरङ्ग को मदिरा के मद में डुबो कर उसने हठात् प्रश्न किया—'उसने पढ़ना छोड़ दिया?...बेचारी मातृहीना

लड़की।—कोई उसे सान्त्वना देने वाला ही नहीं।...अच्छा बारिन्का, क्या उसे मालूम है...उसे पता है कि मैं अभी जीवित हूँ ? आह !'

बारिन्का ने कोई उत्तर न दिया। पाँच मिनट की गम्भीर निस्तब्धता के पश्चात् मुस्तँफ कहने लगा—

'मैं उसे बहुत चाहता हूँ, बेटा ! वह मेरी एक-मात्र कन्या है, और तुम जानते हो न, बुढ़ापे की सफेदी में एक मनुष्य को उसकी पुत्री कितनी अधिक सांत्वना दे सकती है !...मैं उसे एक बार देखना चाहता हूँ। मैं उसे देख सकता हूँ न, बेटे ?'

सूखे हुए चेहरे पर ढुलके हुए अश्रु-बिन्दुओं को रुमाल से पोंछ कर उसने पूछा था।

'हाँ-हाँ ! क्यों नहीं। जब आपकी इच्छा हो।'

'उसे इसमें कोई आपत्ति तो न होगी ?'

'उसे ? अरे नहीं ! वह तो स्वयं आपसे मिलने गई थी।'

आह बच्ची मेरी !...अच्छा तो बॅारिन्का बेटा, मैं उससे अवश्य मिलने जाऊँगा।...तीन दिवसों तक एक एक बूँद भी न पियूँगा, जिससे मेरा चेहरा रूखा न लगे, वह मुझे शराबी न समझ ले। हजामत बनवा लूँगा, बाल कटवा लूँगा, और...और, यदि तुम्हें कोई आपत्ति न होगी, तो तुम्हारा सूट पहन चलूँगा।...अपनी इस हीन दशा का परिचय देकर मैं अपनी बेटी के कोमल हृदय को आघात न पहुँचाऊँगा।...तुम मेरे साथ चलोगे न ? ...तो यह तय रहा ?'

'जी हाँ।'

'गाड़ी रोको।'

सामने शराबखाना था। मुस्तँफ़ वहीं गया। बॉरिन्का केवल चुपचाप बैठा हुआ अपने पिता के आने की प्रतीक्षा करने लगा। घर पहुँचने तक मार्ग में वह दो बार और शराब पीने उतरा...फिर गली के सामने गाड़ीवान को पैसे देकर बिदा कर दिया। सामने गली थी, और उसके सामने मुस्तँफ़ का निवास-स्थान। ·

गली में घुसते हुए उसने पुत्र से कहा—यदि बूढ़ा तुम्हें कुछ ऊँच-नीच कह दे, तो उसका बुरा न मानना बेटा!—वह बकी और नीच तो अवश्य है, परन्तु कपटी नहीं।...माधुर्य उसके हृदय में प्रेम और वात्सल्य की उष्ण उर्मियाँ उठाता रहता है।

वे घर में घुसे, फिर घर के अंधकारमय प्रकोष्ठ में। समीप ही पाकशाला थी, और उसके निकट ही...।

'यह मेरा कमरा है'—एक छोटे-से कमरे को दिखा कर उसने कहा। टेबुल पर भोजन रक्खा था, और वृद्धा दो अन्य स्त्रियों के साथ खा रही थी। उन्हें देख कर वह रुक गई।

'तुम्हें वह मिल गया न?'—वृद्धा ने दो रूखे शब्दों को जैसे फेंक-सा दिया।

'मिल गया! मिल गया!'''अच्छा बॉरिन्का, आओ बेटा, तुम भी सहयोग दो। सब कुछ साधारण ही है।...हम लोग साधारण रूप से ही जीवन-यापन करते हैं।'

अपने पुत्र को अपनी वास्तविक अवस्था का परिचय देते हुए उसे लज्जा आ रही थी। एक विचित्र स्वभाव की वृद्धा स्त्री, उसे उसके सम्मुख झुकना ही पड़ता था।

'हाँ, भैया मेरे, हम इसी अवस्था में रहना पसन्द करते हैं—बाह्या-डम्बर-शून्य !...साधारण रूपसे...हम तुम्हारी तरह विलासिता के छत्र के नीचे काल्पनिक सुख के अकशायी बनकर नहीं रहते !...हम तो ऐसे ही रहते हैं।...तुम तो समझते हो न।...शराब...शराब...आह !'

एक स्त्री को, अपरिचित बॉरिन्का के सम्मुख शराब पीने में संकोच था। वह चाहती थी, बॉरिन्का भी...।

'...एक गिलास आपके लिए भी।...'

'नवयुवक।...लो पियो ! जीवन में शराब...शराब...' पुत्र की ओर बिना देखे ही पिता ने कह डाला।

आसव-पूर्ण पात्र आया। पिता को प्रसन्न करने के लिए उसने हाथ में ले लिया।...और जब, सब भोजन पर झुके हुए थे उसने आँख बचाकर पास की नाली में फेंक दिया।

गिलास खाली हो गया। वृद्धा ने देखा, कहा—और...

'बस, क्षमा कीजिए।'—बारिन्का ने कहा।

चाय !—उसने दो प्याले चाय तो पी ली।

'शायद हमारा पारिवारिक प्रबन्ध आपको पसन्द नहीं ?'—वृद्धा ने उससे पूछा।

'जी नहीं ! ऐसा तो नहीं...।'—उसने कहा।

'मैं जानता हूँ।'—पात्र में थोड़ी-सी ढालते हुए मुस्तॅफ ने कहा—'तुम...तुम...आज तुम वैभव का आलिङ्गन कर रहे हो न !...यौवन...जीवन...तुम्हारे जीवन का प्रवाह संसार-सागर की प्रशान्त धारा में मिल कर अनन्त ऐश्वर्य की प्रतीक्षा में बढ़ता हुआ स्थिर खड़ा है। तुम समझते हो,

मैं भी समझता हूँ, तुम मेरे इस जीवन से घृणा करते हो। शायद तुम यह जानते... नवयुवक...शराब...शराब...शराब...शरा...।'

भोजन था, मदिरा थी, विचित्र आमोद-हास्य था, भिन्न वातावरण था। वह बैठा रहा, यह सब कुछ देखता रहा, बड़ी देर तक। फिर उसने बिदा माँगी।

वृद्ध उठ खड़ा हुआ।

'हाँ, अब मैं तुम्हें अधिक देर तक न रोकूँगा।...बारिन्का, तुम्हारी रुचि के अनुकूल न रहने के कारण मैं तुम से क्षमा माँगता हूँ ?'

'जाइएगा ?...अच्छा नमस्कार।'—वृद्धा ने भी रूखी हँसी हँस कर कहा।

हाल को पार कर जब वे द्वार पर पहुँचे, वृद्ध मुस्तॅफ ने रोते हुए कहा—जाते हो ?—अच्छा जाओ।—उसने बारिन्का को प्रगाढ़ आलिङ्गन में आबद्ध करते हुए कहा—मैं सोनियाँ को देखना चाहता हूँ।...तुम इसके लिए व्यवस्था कर दोगे न ?—मैं हजामत बनवा लूँगा, तुम्हारा सूट...सच कहता हूँ, विश्वास मानो, उसके सम्मुख अपना मुख नहीं खोलूँगा। मैं उसे देखना भर चाहता हूँ।...एक शब्द भी नहीं...मैं ईश्वर की सौगन्ध खाता हूँ !'

उसने सुना, कमरे में वे हँस रही थीं। उसने हिचकियों के बीच में, उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—

'अच्छा !.. चिरंजीवि हो बेटा, लाल मेरे !'

—※—

निद्रा के अञ्चल में

नीलिमामयी रजनी घन अम्बर पर ओढ़ कर निस्तब्धता के प्राङ्गण में केलि कर रही थी। विश्व नीहारजा के अञ्चल में मुँह छिपा कर क्षणिक सुख की उर्मिल ज्योति में वैभव का अनुभव कर रहा था। दो छः और एक—'वार्का' जीवन की इतनी थोड़ी-सी सीढ़ियों को पारकर झूले के पास बैठी हुई, उनींदी आँखों और शिथिल हाथों को बार-बार हिला कर झूलों में पड़े हुए बच्चे को झुला कर सुला रही थी।

एक छोटी-सी लोरी के मार्मिक पद को बार-बार गुनगुना कर सुना रही थी—

'आजारी निंदिया आजारी......'

और निंदिया उसे भी झूम-झूम कर सुलाने का उपक्रम कर रही थी। परन्तु बेचारी भोली नींद को क्या मालूम कि वह केवल उस छोटे-से बच्चे को सुलाने के लिए उसका आवाहन कर रही है।......पहले बच्चा तो सो जाय, फिर वह तो सोही जायगी।

उसके कमरे में हरा-हरा लैम्प आलोकित था। और खूँटियों पर बच्चे के झबले, जाँघिये, और गत्ते सूख रहे थे। वार्का झूला झुला रही थी—बच्चे को सुलाने के लिए; लेकिन उसे स्वयं भी नींद आ रही थी।......और उसे झपकी आही गई।

बच्चा फिर रोने लगा। वह बीमार था और वह रोता था; लेकिन कौन जाने वह कब अच्छा होगा। और वार्का को नींद आ रही थी। वह

सोना चाहती थी, उसकी पलकें नींद से झुकी पड़ती थीं—वह सोना चाहती थी। बच्चा रोया, वह फिर गाने लगी—

'आजारी निंदिया आजारी......'

नींद की झपकियों में उसका गुनगुनाना स्वप्न और आकांक्षा-सा मधुर प्रतीत होता था। दूसरे कमरे में, पास ही, वार्का के स्वामी अपने अतिथि के साथ सो रहे थे। उनके खुर्राटे वार्का के हृदय में एक हूक-सी उठा कर, अस्फुट स्वर में लोरी का वही मधुर पद गुनगुना कर उसके अन्तरतम की मधुर भावना को उसके अधरों से व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे थे—'आजारी निंदिया आजारी......'। वह सोना चाहती थी, परन्तु वह कैसे सोये?......यदि वह सो जाय, तो उसका स्वामी और स्वामिनी, दोनों ही, उसे आकर पीटने लगेंगे। दासत्व की कठिन शृंखला में जकड़ी हुई बेचारी वार्का कैसे सो सकती थी? हे भगवान्! आह! कितनी जटिल समस्या!—रात्रि में वह सो भी नहीं सकती थी।

दीपक शून्यता का परिचायक बन कर अविरल गति से टिमटिमा रहा था—जैसे उसे भी वार्का की भाँति विश्राम लेने की आज्ञा न थी। दया, आर्द्रता; और भावनाओं को अपने थकित मस्तिष्क में वह भुला देना चाहती थी।—परन्तु वे सोते कैसे?—उनींदी आँखों से वे सब निकल कर आकाश में आच्छादित काले मेघों में अव्यक्त रूप से मिल जाने की चेष्टा कर रहे थे। वह जैसे अनुभव कर रही थी कि वे आकाशाच्छादित घन घोर होकर रो रहे थे—ठीक उसी बच्चे की भाँति! वायु का कठोर प्रवाह उन्हें उड़ा कर बहा ले गया। वार्का ने खिड़की से देखा शून्य पथ वर्षा से चमचमा कर, आलोकित दीप स्तम्भों की सहायता से निरख रहा था।

उसने देखा—बड़ी-बड़ी गाड़ियों पर असबाब लादे हुए थोड़े-से मनुष्य सड़क पर जा रहे थे। प्रकाश स्तम्भों के इंगित-मात्र पर उनकी छाया कभी आगे बढ़ती, कभी पीछे चली जाती। और उसने देखा तार के खम्भों पर, दिन में चहकने वाले पक्षी; विश्राम ले रहे थे—वे सो रहे थे। वह भी सोना चाहती थी, उसे उन पर ईर्ष्या हुई।—वह सोना चाहती थी।

और बच्चा चिल्लाया। वह खिजलाई। और फिर उसने गुनगुनाया, खीजकर, रोकर, गाकर—आजारी निंदिया आजारी......।

कल्पना के छाय-भवन में भूत की स्वप्निल स्मृतियों के सहारे, घनांधकार में वह देख रही थी।

टूटे से मकान के उखड़े हुए फर्श पर उसका पिता पड़ा हुआ है। वह उसे देख नहीं सकती। वह सुन रही है, वह कराह रहा था। वायु के झकोरों में उड़ते हुए वेदना के वे वेदनामय डोरे—आह!

उसकी माँ किसी को कहने गई थी कि वह मर रहा है। उसे देर हुई, उसे आने में विलम्ब हुआ, क्यों हुआ—वह सोच रही थी। और उसका पिता अपनी कुछ अन्तिम साँसों को बटोर कर कराह रहा था। फिर उसने अनुभव किया—उसके द्वार पर एक गाड़ी रुकी। डाक्टर ने झोंपड़े में प्रवेश किया।

'प्रकाश करो!'—उसने कहा।

'आह! हे भगवान्! आह!'—वह कराह रहा था।

प्रकाश के सहारे में उसने उसे देखा—क्यों, तुम्हें क्या हुआ?—उसने उससे पूछा।

'मेरी मृत्यु की घड़ियाँ अब किसी समय की प्रतीक्षा कर रही हैं।......हुजूर अब मैं मरने वाला हूँ।' —उसके रोगी पिता ने कहा था।

'हिश पागल !......बड़ी जल्दी अच्छे हो जाओगे।'—दयालु चिकित्सक ने नम्रता-पूर्वक उसे आश्वासन दिया; परन्तु निराशा की स्पष्ट भावनाएँ उसके मुख-मंडल पर प्रदीप्त थीं।

आध घण्टे तक रोगी की परीक्षा करने के उपरान्त उसने उसकी माता से कहा था—इन्हें अस्पताल ले जाओ। अभी, इसी समय!......मैं चिकीत्सक के नाम एक पत्र लिखे देता हूँ।

'लेकिन सरकार, हम तो इन्हें वहाँ तक सवारी पर ले जाने की व्यवस्था भी नहीं कर सकते।'

'घबराओ मत, मैं इसका भी प्रबन्ध कर दूँगा।'—दयालु डाक्टर ने कहा था।

और उसी रात्रि को उसे अस्पताल पहुँचा दिया गया...। उसकी माँ दूसरे दिन उससे...।

सहसा बच्चा रो पड़ा। उसने गुनगुना कर, उसे थपथपा कर, झूला झुला कर सुला दिया।

दूसरे दिन, प्रातःकाल उनकी माँ ने उससे कहा था—आह! बेटी, तेरे पिता चल बसे, हमें अनाथ बना कर, निस्सहाय अवस्था में जीवन भर रोता रहने के लिए छोड़ कर।

दुःख के इस अन्तिम दृश्य को, थकी हुई तेरह वर्ष की छोटी-सी बालिका वार्का स्वप्न में देखने लगी थी। वह रो रही थी—स्वप्न में। इस भीषण उत्ताप से दग्ध वार्का पगली दुनिया के बाह्याडम्बर से विमुख होकर

जंगल में जाना चाहती थी। वह चल पड़ी, रोती हुई जंगल की ओर। उसका रुदन प्रतिध्वनित होकर गूँज उठा और इसी समय किसी ने, उसके आँसुओं से गीले गालों पर तड़ातड़ दो तमाचे मार दिये। उसने सहसा आँख खोल कर देखा—उसका स्वामी खड़ा था।

'बच्चा रो रहा है और तुम सो रही हो, क्यों?'—दो तमाचे उसने और लगा दिये।

झूला हिलने लगा। रोती हुई वह गुनगुनाने लगी। बच्चा फिर सो गया। कल्पना के विशाल प्रदेश में सो कर, स्वप्न की थपकियाँ खाने के लिए निद्रा ने फिर उसे विवश कर दिया। पुराना स्वप्न फिर चलने लगा।

उसकी माँ उससे कह कर रही थी—चलो, नगर में कहीं चल कर पेट का प्रबन्ध किया जाय।

'बच्चे को मुझे दो।...वार्का, बच्चे को यहाँ दे जाओ।'—वह जैसे इसे भी स्वप्न में सुन रही थी। तड़! ..तड़!! फिर तमाचे पड़े। उसने आँखें खोल कर देखा—उसकी स्वामिनी रोष के लाल-लाल डोरे अपनी आँखों में फेला कर उसके सामने खड़ी थी।

'फिर सो गई!'—बेचारी वार्का के गाल जैसे तमाचा खाने के ही लिए बने थे।

मालकिन झूले के पास तक गई। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया। वह उसे दूध पिलाने लगी। वार्का चुपचाप खड़ी थी; सिर झुकाकर, रोती हुई, व्यथित हृदया; आह! वायु का एक निर्मल झोंका आकर, कुछ गुनगुना कर फिर चला गया।

'इसे ले लो।'—बटन बन्द करती हुई मालकिन ने उससे कहा। वार्का बच्चे को कन्धे से लगा कर चुपचाप खड़ी थी। मालकिन ने फिर कहा—'इसपर किसी प्रेत की छाया पड़ गई है।'

वार्का ने उसे झूले में लिटा दिया, फिर उसे झुलाने लगी। प्रातः काल आने की प्रतीक्षा कर रहा था। नींद से झुकी हुई आँखें झुकी पड़ रही थीं। झूले के डन्डे का सहारा ले वह लेट गई।

'वार्का, स्टोव जलाओ!'—फिर वही कठोर स्वर सहसा उसके कानों में गूँज उठा। उसने झूले को छोड़ दिया। वह स्टोव जलाने के लिए चली।

'वार्का, चाय बनाओ।'

'वार्का, कमरा साफ करो।'

'वार्का, सीढ़ियाँ धोओ।'

और दिन भर वार्का दौड़-दौड़ कर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करती रही। खाना बनाना, खिलाना, और गृहस्थी के दूसरे काम करना—वह दिन भर काम ही तो करती रहती थी। उसे विश्राम कहाँ?

दिन बीत गया। रात्रि आई। वह सोना चाहती थी, उसे इसी लिए रात्रि के आगमन से प्रसन्नता हुई। वह अपने कमरे की ओर चली। इसी समय—

'वार्का, चाय बनाओ।'

'वार्का, बाजार से तीन बोतल शराब की खरीद लाओ।'

बेचारी वार्का फिर उठी और काम करने लगी। आखिर को आज्ञाओं का अन्त हुआ। अन्तिम आज्ञा थी—

'वार्का झूला झुला दो।'

और वह झूला झुला कर बच्चे को सुलाने के लिए गुनगुनाने लगी—आजा री निंदिया आजारी......।

लेकिन बच्चा रोता ही रहा। वह सोना चाहती थी। घर में सब सो रहे थे। विश्व में सब सो रहे थे, पशु, पक्षी, जड़, चेतन—सुख, शान्ति और स्वप्नों की मधुरिम निद्रा में। वह भी सोना चाहती थी। बच्चा रो रहा था, फिर वह कैसे सोये ?—उसे प्रतीत हुआ जैसे वह बच्चा ही उसकी सुख-निद्रा का बाधक है।

छोटा-सा अबोध शिशु उसको कितना बड़ा शत्रु था!

वार्का हँसी—पागल-सी होकर। एक विचार आया, और उसके नेत्र चमक उठे। वह स्टूल से उठी। भावनाओं के थपेड़े उसे कमरे में इधर उधर फिराने लगे।

वह उठ खड़ी हुई। मुस्कुरा कर, पाशविक विचारों की आश्रिता बन कर वह झूले तक पहुँची। बच्चे को गोद में उठा लिया, बच्चा रो रहा था। उसकी अँगुलियाँ कठोर बन कर बच्चे के गले पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ सटीक जा बैठती हैं।......वह हँसी—पागल-सी हो कर। फिर वह सो गई, मृत् शिशु की भाँति शान्ति के साथ—सुख-निद्रा में।

शिक्षा

'कोई सज्जन तुमसे मिलना चाहते थे।......शायद किसी पुस्तक के विषय में तुमसे कुछ वार्तालाप करना था।......डाकिया आया था, तुम्हारे नाम के दो पत्र और समाचार-पत्र दे गया है—मैंने उन्हें तुम्हारी मेज़ पर रख दिया है।......और, मैं तुमसे एक बात कहूँ, पेट्रोविच ?......देखो बुरा न मानना, तुम 'सिरोज़ा' की ओर बिलकुल भी नहीं देखते। उसके लक्षण नित्यप्रति बिगड़ते ही चले जा रहे हैं।......अभी कल ही,......हाँ......नहीं परसों, मैंने उसे सिगरेट पीते हुए पकड़ा था। जब मैं उसे फटकारने लगी, तब अपनी आदत के अनुसार वह कान पर हाथ रख कर चीखने लगा—इतनी ज़ोर से कि मेरा स्वर किसी को सुनाई ही न पड़े।'

आफ़िस से लौट कर वह मोज़े उतार रहा था। गृहस्थी के रङ्गमञ्च की नटी, उस छोटे-से पारिवारिक-संसार की संरक्षिका उसके सम्मुख दैनिक जीवन के अलबेले डोरे सुलझाने लगी; और डिस्ट्रिक्ट-कोर्ट का वह उच्च पदाधिकारी उसकी बात पर हँसकर कहने लगा—

'सरोज़ा सिगरेट पीता है ? .....हूँ:—कोमल अधरों में सिगरेट दबाये हुए......हाँ, मैं उसकी कल्पना तो कर सकता हूँ।......उसकी आयु क्या होगी ?'

'सात वर्ष का है।......तुम इसे साधारण-सी बात समझ रहे हो; परन्तु सच कहती हूँ, इस अवस्था में धूम्रपान करना स्वास्थ्य के लिए विशेष हानिकारक है। बुरी आदत का......'

'हाँ, ठीक तो है।......परन्तु उसे सिगरेट मिल कहाँ से गई ?'

'तुम्हारी मेज़ पर रक्खी रहती है।'

'मेरी मेज़ पर ! अच्छा उसे यहाँ भेजो।'

संरक्षिका जब भीतर चली गई, वह आँखें बन्द कर एक आरामकुर्सी पर लेट गया। कल्पना के सुनहरे डोरे फैला कर उसने देखा—एक चित्र की भाँति—सिरोज़ा एक बहुत बड़ी सिगरेट—समझ लीजिए एक गज़ लम्बी—मुँह में दबाये हुए है, और धुएँ की एक घनघोर काली घटा-सी उसके चतुर्दिक आच्छादित है। सिरोज़ा के धूम्रपान के इस काल्पनिक चित्र को अपने मस्तिष्क-मन्दिर में सजा कर वह सहसा हँस पड़ा; परन्तु जैसे उसे ध्यान आया—संरक्षिका उसकी इस असामयिक बुरी आदत से कितनी दुःखी है!—और फिर स्कूल में भी ऐसी बुरी आदत के दास छात्रों को कितनी हेय दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें मारा-पीटा जाता है, स्कूल से निकाल दिया जाता है, और तब उनका मस्त जीवन अत्यन्त घृणित और अक्षम्य वासनाओं के कुचक्र में पड़ कर दो निःश्वास और एक आह-सा व्यथित हो जाता है।......वह अपने स्कूल-जीवन के संस्मरण बटोरने लगा—उसके प्रधानाध्यापक महोदय कितने सज्जन, विद्वान् और वात्सल्यमय हृदय के थे! फिर भी, एक बार जब उन्होंने एक लड़के को सिगरेट पीते पकड़ पाया था......तब वे उस पर कितने क्रुद्ध हुए थे!—उसे स्कूल से निकाल दिया था, और फिर......और फिर......ओह! वह अपने बच्चे का जीवन नष्ट होते हुए न देख सकेगा। उसे सुमार्ग पर लाना ही होगा।

इन्हीं कुछ बातों को सोचते-सोचते वह थक गया। प्रायः दिन भर में भी उसे कुछ-न-कुछ सोचना ही पड़ता था और उसके पश्चात्, आफ़िस

घर में—यही सब कुछ। आज घरेलू वातावरण की यही एक समस्या उसके सामने उपस्थित थी।......उसके बच्चे, सिरोज़ा का जीवन !

नौ बज रहे थे। ऊपर के कमरे से उसे किसी की पद-ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रही थी—जैसे कोई पीडाक्रान्त मनुष्य अनमना-सा हो, व्याकुलता के आघात से व्यथित-सा इधर-उधर टहल रहा हो।......उसे फिर सुनाई पड़ने लगा—संरक्षिका सिरोज़ा से कुछ कह रही थी।

'पापा आ गये ?'—लड़का कह रहा था,—'पापा आ......ग...... ये ! पापा ! पापा !'

'मैं उससे क्या कहूँ ?'—वह लेटे-लेटे सोचने लगा।

और तब तक वह कुछ सोच भी न पाया था, कि सिरोज़ा उसके कमरे में आया।

सिरोज़ा—सुकुमार, स्त्रियोचित सरलता का आभार अपने मुख-मण्डल पर लादे,—वह दुबला-पतला सीधा-सा सात वर्ष का बालक।

'प्रणाम करता हूँ, पापा।'—सरलता से सरल बालक ने उसे प्रणाम किया और कहा—'आपने मुझे बुलाया था ?'

इसी समय उसने उससे कहा—बस अब मैं तुम्हें प्यार नहीं करता। मैं तुमसे अत्यन्त क्रुद्ध हूँ। बस अब तुम मेरे बेटे नहीं हो।......मैं तुमसे बोलना भी नहीं चाहता।......पैसे और मिठाई देना भी नहीं...।

सिरोज़ा ने क्षुब्ध होकर आर्त स्वर में कहा—परन्तु मैंने कौन-सा अपराध किया है ?......अब मैं आपके कमरे में भी नहीं आता, आपकी कोई चीज़ भी नहीं छूता।......पापा !

'मालकिन कह रही थी, उसने तुम्हें सिगरेट पीते हुए पकड़ा था...... क्यों, यह ठीक है न ?......तुम सिगरेट पीते हो ?'

'जी, मैंने......मैंने एक बार पी थी।'

'झूठ !......देखो फिर झूठ बोले तुम ?'—उसकी सरलता पर आनेवाली मुस्कान को छिपा कर रोष का नाट्य दिखाते हुए उसने उससे कहा—'मालकिन कह रही थी, उसने तुम्हें दो बार सिगरेट पीते हुए पकड़ा है।......तो इसके मानी यह हैं कि तुमने तीन अपराध किये—सिगरेट पीते हो, दूसरे की सिगरेट चुरा कर पीते हो, और फिर झूठ बोलते हो। ......तीन अपराध !......क्यों ?'

मुस्कुराहट भरी नाचती हुई आँखों को घुमाकर उसने कहा—हाँ पिताजी, सचमुच मैंने दो बार सिगरेट पी है।......सच-सच कहता हूँ, बस केवल दो बार—एक आज और......एक, एक किसी और दिन पी थी।

'हूँः—तो तुमने दो बार सिगरेट पी !—मैं तुमसे बेहद नाराज़ हूं ! तुमको चाहिए था कि राजा बेटे बनो......अच्छे-से लड़के, शरीफ़, ईमानदार, राजा बेटे ; लेकिन तुम तो खराब होते चले जा रहे हो। बदमाश कहीं के !'

वह फिर उसे समझाने लगा—एक तो तुम सिगरेट पीते हो, यह कितनी बुरी आदत है !—और फिर दूसरे की चुरा कर पीना !—यह तो और भी बुरी आदत है।......मनुष्य को चाहिए कि वह किसी दूसरे की वस्तु को छूए भी नहीं।...भला तुम्हें मेरी मेज़ से सिगरेट उठाने का

क्या अधिकार ?......अब जैसे मालकिन के पास कपड़े हैं, गहने हैं—तुम्हें या मुझे, किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि बिना उनसे पूछे हम उनकी चीज़ें ले लें।...जो कोई दूसरे की चीज़ को बिना उसकी आज्ञा के ही अपने व्यवहार में लाने लगता है वह बदमाश होता है, लोग उसे चोर कहते हैं!...तुम्हारे पास घोड़ा है, चित्र हैं, खिलौने हैं, मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं उन्हें ले लूँ।......भला तुम्हीं बताओ, मैं कभी कोई तुम्हारी चीज़ लेता हूँ ?...इसी प्रकार तुम्हें भी मेरी वस्तु को लेने का कोई अधिकार नहीं !'

'आप उन्हें ले सकते हैं पापा।'—सिरोजा ने सरलतापूर्वक कह दिया—'आप मेरी कोई भी चीज़ ले सकते हैं।...अब जैसे यह पीला कुत्ता आप की मेज़ पर रक्खा हुआ है !—यह मेरा है; लेकिन मैं इसका विचार भी......'

'तुम मेरी बात समझे नहीं'—पिता ने पुत्र से कहा—'यह कुत्ता तो तुमने मुझे दे दिया था, अब यह मेरा है; लेकिन सिगरेट तो मैंने तुम्हें नहीं दी थी न!...फिर तुम उसे बिना मुझसे पूछे ही क्यों उठा ले गये ?'

और इसी प्रकार वह उसे समझाने की निष्फल चेष्टा कर रहा था—निष्फल इसलिए कि वह उसे भली भाँति समझा ही नहीं रहा था। और वह बच्चा, छोटा-सा, सात वर्ष का सरल सिरोज़ा, केवल उसे अन्य दैनिक घटना क्रम की साधारण बातों-सा सुन रहा था। प्रायः नित्यप्रति ही, सायंकाल के समय, वह अपने पापा से यों ही कुछ मजेदार बातें किया करता। उसने मेज़ पर रक्खे हुए कलम को उठा लिया, फिर कलमदान

को देखने लगा, और फिर गोंददानी को देखकर सहसा उसके हृदय में एक प्रश्न उपस्थित हुआ, उसने पापा से पूछा—

'पापा गोंद किस चीज़ का बनता है ?'—उसने सहसा गोंददानी को उठाकर उस पर अपनी आँखें गड़ा दीं।

पिताने उसे उसके हाथ से लेकर फिर मेज़ पर रख दिया और कहने लगा—

'फिर तुम सिगरेट पीते हो......यह कितनी बुरी आदत है ? मैं सिगरेट पीता हूँ, इसका तात्पर्य यह थोड़े है कि सब लोग मेरी ही नकल करें। मैं सिगरेट पीता हूँ, मैं यह जानता हूँ कि यह कितनी बुरी आदत है !—और मैं अपने को कोसता हूँ, इसी आदत के कारण अपने को प्यार नहीं करता !...'—उस समय वह मन-ही-मन अपनी इस उपदेश-प्रणाली की प्रशंसा कर रहा था—'सिगरेट पीने से मनुष्य बीमार पड़ जाता है, और जो लोग सिगरेट पीते हैं, वे बहुत जल्दी ही मर जाते हैं। उन्हें क्षय रोग हो जाता है। देखो न तुम्हारे चाचा इसीसे मर गये। यदि वे सिगरेट न पीते होते, तो कदाचित् आज जीवित होते।'

गम्भीरता-पूर्वक सिरोज़ा लैम्प के 'शेड' को अपनी पतली-पतली, छोटी-छोटी अँगुलियों से छू रहा था—उसने एक निःश्वास छोड़ दी।

विचारों के गहन प्राङ्गण में छोटा-सा वह बालक, सिरोज़ा, न मालूम किन भावनाओं को लेकर, विचरण कर रहा था। उसकी मुख-मुद्रा स्पष्ट बतला रही थी कि वह किसी अत्यन्त गम्भीर विषय को सोच रहा था। कदाचित् उसकी अपरिपक्व भावनाएँ मृत्यु की जटिल समस्या को हल करने का प्रयत्न कर रही थीं। वह सोच रहा था—मृत्यु—मृत्यु उसकी माता

को और उसके चाचा को उससे छुड़ा कर बहुत दूर ले गई। मृत्यु कदाचित् छोटे-छोटे मुन्ने-मुन्ने बच्चों को इस संसार में अकेला रोता हुआ छोड़ कर उनकी माताओं को और पितृव्यों को उनसे हटा कर, उनसे छीन कर ले जाती है।...बहुत दूर आकाश में, रात्रि के समय चमकते हुए नक्षत्रों में उन्हें जाकर बिठा देती है, और वहाँ से वे पृथ्वी का अवलोकन किया करते हैं।......परन्तु स्वजनों का वियोग क्या उन्हें पीड़ा नहीं पहुँचाता ?

'मैं और उसे समझाऊँ ?'—वह सोच रहा था—'वह तो इस पर कुछ ध्यान ही नहीं दे रहा है।...जैसे साधारण बातचीत...और कुछ भी नहीं...कुछ...नहीं'– नहीं उसे समझाना ही होगा। और...और... लेकिन मैं उसे समझाऊँ कैसे ?'

वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ, और दोनों हाथों को पीछे की ओर बाँध कर कमरे में टहलने लगा।

'मेरे समय में तो यह प्रश्न, यह क्या, इस प्रकार के सब प्रश्न अत्यन्त सरलता के साथ हल कर लिये जाते थे।'

वह सोच रहा था—यदि किसी को सिगरेट पीते हुए पकड़ पाया, उसे दो तीन हाथ मारे, फटकार बतलाई, फिर समझा दिया—बस चलिए, लड़का ठीक राह पर आ गया।...परन्तु ऐसे लड़के कम ही होते थे। मा के पेट से चतुरता का पाठ सीखे हुए बच्चे सब से छिपा कर, अस्तबल में जाकर पीते, वहाँ पकड़े गये, तो नदी के तट पर, किसी एकान्त स्थल पर जाकर पीना आरम्भ कर देते थे।...वे कभी भी अपनी उस बुरी आदत को छोड़ न सके।...मैं ही...मुझे 'ममा' मना करती थीं और मुझे

मिठाई और पैसे का लालच दिया करती थीं। केवल लालच ही नहीं, वे मुझे दिया भी करती थीं।...परन्तु आज...समय बदल गया...नई शिक्षा पद्धति में मारना-पीटना नहीं; प्यार से, लाड़ से, समझ कर समझाना ही उत्तम रीति मानी जाती है।'

उस समय सिरोजा कुर्सी को मेज़ के पास रखकर बैठा हुआ नीली पेन्सिल से अपने घर-का चित्र सादे कागज पर खींच रहा था।

'आज रसोईदारिन की अँगुली कट गई, पापा!'—आँखों को अपने चित्रपर गड़ाये हुए, वह अपने पापा को एक नई घटना सुनाने लगा, वह उसकी दृष्टि में अधिक महत्व-पूर्ण थी। उसके हाथ भी रुके न थे, वह अपना काम भी कर रहा था और कहता भी चला—'उसकी अँगुली से खूब खून निकलने लगा। मालकिन ने कहा—पानी से धो लो, लेकिन उसने तो उसे मुँह से चूस लिया। गन्दी! छिः!—छिः!—वह गन्दी है न पापा?'

फिर उसने बतलाया—भोजन के समय, एक बीन बजानेवाला छोटी-सी लड़की के साथ आया था। वह लड़की खूब नाचती थी, खूब गाती थी।

उसे मैं क्या समझाऊँ?'—वह सोच रहा था—'उसकी विचारधारा इस समय न मालूम किस ओर प्रवाहित हो रही है। उसकी कल्पना-शक्ति इस समय न मालूम किन भावनाओं के प्रदेश में विचरण कर रही है? वह तो मेरी बातों की ओर आकृष्ट भी नहीं हो रहा!...मैं उसे मारूँ या फटकारूँ या क्या करूँ?—मैं उसे कैसे समझाऊँ कि सिगरेट पीना बुरी बात है।'

वह डिस्ट्रिक्ट-कोर्ट का उच्च पदाधिकारी, जिसे सर्वदा चोरों, बदमाशों, जुआरियों आदि को सज़ा दे कर उचित मार्ग दिखाना पड़ता है, उसे, अपने पुत्र को समझाना आज दुरूह मालूम पड़ रहा था।

'प्रतिज्ञा करो कि आज से सिगरेट न पियोगे!'—उसने अपने पुत्र से कहा।

'प्रतिज्ञा!'—सहसा इसे सुन कर सिरोज़ा ने चित्र बनाना थोड़ी देर के लिए रोक दिया, और पिता की ओर देखने लगा—'प्रतिज्ञा!'

'उसे प्रतिज्ञा के विषय में ही ठीक-ठीक समझाया नहीं जा सकता।... कितना पागल हूँ मैं! उससे प्रतिज्ञा कराता हूँ?......भला वह बच्चा प्रतिज्ञा के मूल्य को क्या जाने?......यदि कोई अध्यापक मेरी इस उपदेश-प्रणाली को सुने और गुने, तो वह मुझे क्या कहेगा? उसे समझाना है; परन्तु मैं उसे समझा नहीं सकता।...यदि वह मेरा पुत्र न होकर कोई साधारण अपराधी होता, तो मैं उसे भली भाँति समझा सकता था...।'

उसने झुककर सिरोज़ा का बनाया हुआ चित्र उठा लिया—'आदमी मकान से अधिक ऊँचा तो होता नहीं!...देखो तुम्हारे चित्र में तो सिपाही के कन्धे तक ही मकान आता है।'

'लेकिन पापा, यदि मैं इसे मकान से छोटा बना देता, तो फिर इसकी आँखें कैसे दिखाई देतीं?'

और उसका 'पापा' सोच रहा था—मैंने इससे इस विषय में बातें ही क्यों की?...मैं तो इसे समझा रहा था न!

सिरोज़ा अपने पिता की गोद में बैठकर उसकी दाढ़ी को अपने छोटे-छोटे हाथों से सहला रहा था।—

'पापा' आपकी दाढ़ी......'

और वह सोच रहा था—वात्सल्य !—यदि पिता के हृदय में ममत्व की मात्रा कुछ कम होती, अथवा नहीं होती...तो कदाचित् आज मैं इसे अवश्य समझा सकता था।...'

बच्चे की गर्म साँसें आ-आ कर उसके मुखमण्डल पर स्निग्धता की छाया डाल जाती थीं। उसके हृदय पर कोमल भावनाओं ने अपने सुनहरे डोरों का जाल बिखेर दिया। वह सोचने लगा—सोने के समय मैं इसे समझाऊँ क्या ?

घड़ी ने टन टन करके दस बजा दिये—'जाओ बेटा, तुम्हारे सोने का समय हो गया।'

नहीं पापा !...मुझे एक कहानी सुना दीजिए।...मैं सच कहता हूँ, आप मुझे एक कहानी सुना दीजिए। बस, फिर मैं सोने चला जाऊँगा।

वह कभी-कभी उसे कहानियाँ सुनाया करता था—एक परी थी—एक राजा था, एक रानी थी,—वह ऐसी ही बहुत-सी मजेदार कहानियाँ सुनाता था।......और बच्चा, छोटा-सा सात वर्ष का सिरोजा उसे बड़े ध्यान से सुना करता था। वह सोच रहा था—कौन-सी कहानी सुनाऊँ ?—आज वह उसे उपदेश देना चाहता था।

'सुनाइए न !......'

और वह सुनाने लगा—

'एक राजा था। उसकी बड़ी-बड़ी मूँछे थीं। बड़ी लम्बी दाढ़ी थी। उसके एक बहुत बड़ा महल था।...'

'हूँः'—

'उसके बहुत से नौकर थे। और उसके महल के सामने एक बहुत बड़ा बगीचा था। उसमें एक फ़व्वारा था। उसमें छोटी-छोटी मछलियाँ थीं। उसके बगीचे में बड़े-बड़े पेड़ थे। उसमें फल लगते थे—बड़े स्वादिष्ट। उस बगीचे में फूल भी लगते थे—सुन्दर, सुगन्धित...'

'हाँ, पापा और...?'

'उसके एक लड़का था। बहुत सुन्दर, बड़ा सुशील। वह कभी भी ज़िद नहीं करता था। रात में जल्दी ही सो जाता और सवेरे जल्दी ही उठ बैठता। किसी की मेज़ से कोई चीज़ छूता न था।...लेकिन उसमें एक बड़ी बुरी आदत थी—वह सिगरेट पीता था।'

सिरोज़ा बड़े ध्यान से, पिता की आँखों में आँखें गड़ाये हुए सुन रहा था। 'इसके बाद ?...क्या कहूँ ?'—वह सोच रहा था। क्षण भर रुकने के पश्चात् वह फिर कहने लगा—

'सिगरेट पीने से उसे क्षय रोग हो गया और वह मर गया...उस समय उसकी अवस्था केवल बीस वर्ष की थी।...अब उसका वृद्ध पिता खूब रोया...कमजोर तो था ही, उसके शत्रुओं ने उसे मार डाला, और उसका राज्य छीन लिया...'

कुछ क्षण के लिए पिता और पुत्र, दोनों ही निस्तब्ध हो गये। सिरोज़ा ने कहानी को मनोयोग के साथ सुना। उसके नेत्रों से स्पष्ट झलक आ रही थी, कि वह डर गया है। खिड़की से बाहर काली रात्रि को देखते हुए उसने गम्भीरता-पूर्वक धीरे से कहा—अब सिगरेट कभी न पियूँगा।

जीवन की काली पाषाणमय विभूतियों को हटाने के लिए...रूखे-सूखे,

लम्बे चौड़े उपदेश !...वे कुछ भी हमारा भला नहीं कर सकते...दर्शन, विज्ञान, उपदेश, व्याख्यान...हिं—!.. वे हमें सिखा ही क्या सकते हैं?... कविता, मनोरञ्जन, कहानी......हमें औषधि भी तो मीठी देना चाहिए ?... पागल वे...अपने लड़कों को मार-पीट कर, उपदेश देकर समझाना चाहते हैं......'।

छोटे-से सिरोज़ा ने फिर कदाचित् ही कोई बुरा काम......

—०❀०—

समस्या

छोटा-सा कस्बा, जिसमें केवल दो-तीन टेढ़ी और ऊँची-नीची सड़कें थीं, निद्रा में मग्न था। चारों ओर एक अँधेरा सन्नाटा छाया हुआ था। हवा बन्द थी। बस्ती के बाहर बहुत दूर एक कुत्ता अपनी महीन; किन्तु भयानक आवाज में शोर मचा रहा था। आकाश पर मन्द-मन्द प्रकाश आ चला था, पक्षी उषा का स्वागत कर रहे थे।

हर चीज पर नींद का आधिपत्य हो गया था, पृथ्वी थककर मानों सो गई थी। अगर कोई अभागा अभी तक न सोया था, तो वह एक दवाफरोश मार्डक की युवती स्त्री थी। वह तीन बार बिस्तर पर गई और हर बार उठ बैठी। उसे बिलकुल नींद न आई। वह घबरा रही थी, न-जाने क्यों। आखिर अपने शयन के वस्त्र पहने हुए वह कमरे की खिड़की से लगकर गली में झाँकने लगी। फिर भी उसका चित्त शान्त न हुआ। इस वक्त वह शोक से ऐसी आतुर हो रही थी, कि बार-बार रोने को जी चाहता था। बात क्या थी ?

उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे—उसकी छाती पर कोई बोझ, कोई भारी पत्थर रक्खा हुआ है, जो गले तक आकर उसके उमड़ते हुए आँसुओं को रोक लेता है। थोड़ी दूर पर दीवार से लगा हुआ उसका पति मार्डक खर्राटे ले रहा था। उसकी नाक पर एक मच्छर बैठा हुआ डंक मार रहा था; मगर उसे नींद में कुछ खबर न थी। उसकी मुद्रा प्रसन्न थी, शायद वह स्वप्न देख रहा था, कि बस्ती के सभी आदमी खाँसी से पीड़ित हो गये हैं और उसकी दूकान पर मरीजों की भीड़ लगी हुई है।

दूकान बस्ती से बाहर थी; इसलिए दवाफरोश की स्त्री अपनी खिड़की से दूर के दृश्य, लहराती हुई हरियाली, खेत, सागर आसानी से देख सकती थी। पूर्व दिशा में धीरे धीरे प्रकाश फैलता जाता था। इतने में अग्नि के प्रकाश के समान कोई पीली चीज़ नज़र आई अचानक एक लाल रंग का गोल और प्यारा-प्यारा चाँद झाड़ियों की आड़ से झाँकने लगा और धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा। जरा देर में उसके चेहरे पर, कमरे में सड़कों पर चाँदनी-ही-चाँदनी थी।

सहसा कहीं समीप से ही कुछ आहट सुनाई दी। फिर मालूम हुआ कि दो आदमी हाथ हिला-हिलाकर बातें करते चले आरहे हैं। उसने समझा—शायद यह सिपाही हैं और कप्तान के बँगले से अपने घर वापस जा रहे हैं।

थोड़ी देर में वह और समीप आ गये। अब वह उन्हें अच्छी तरह देख सकती थी। एक खूब मोटा-ताजा और लम्बा, दूसरा दुबला-पतला और ठिगना था। दोनों कदम मिलाये झपटे चले आ रहे थे। उसकी दीवार के नीचे पहुँचकर उनकी चाल धीमी पड़ गई और बातें भी धीरे-धीरे करने लगे। दोनों ने ऊपर की तरफ आँख उठाई।

एक ने कहा—उसी दवाफ़रोश की दूकान मालूम होती है।

'हाँ उसीकी है। मुझे याद है, गत शनिवार को मैं यहाँ रेंड़ी का तेल लेने आया था। बहुत ही बेढंगा और कुरूप आदमी है।'

'इस वक्त सो रहा होगा, उसकी स्त्री भी सोती होगी। आबेटोसो! क्या कहूँ कैसी अनुपम सुन्दरी है।'

'आह! मैं देख चुका हूँ। यही तो मैं भी कहने को था। डाक्टर, बताओ वैसे रूपहीन पति से प्रेम करती होगी, क्या वह उससे कभी प्रेम कर भी सकती है?'

डाक्टर ने ठंढी साँस भरकर कहा—कभी नहीं, सम्भव नहीं। वह उस वक्त खिड़की से लगी सो रही होगी; क्योंकि गरमी के मारे बेचैन हुई जाती होगी, उसके ओठ आधे खुले होंगे, एक पाँव चादर से बाहर निकला हुआ पट्टी से लटक रहा होगा। मन्दबुद्धि दवाफ़रोश को क्या मालूम कि वह कैसी विभूति का स्वामी है। उसे तो औरत और बोतल में कोई अन्तर ही न दीखता होगा।

आबेटोसो ने रुककर कहा—क्यों न इस वक्त चलकर उसकी दूकान से दवा खरीदें। क्या राय है? इस बहाने से शायद हम उसके दर्शन कर सकें।

'अच्छी बात है चलो; मगर रात के समय······।'

आबेटोसो ने मुँह उठाकर कहा—उँह इससे क्या होता है; बल्कि ये लोग तो रात को जाने से और भी खुश होते हैं।

दवाफ़रोश की स्त्री ने ये सब बातें पर्दे की आड़ से सुनीं। जरा देर में उसने घण्टी की आवाज़ सुनी। अपने पति की ओर निश्चिन्त भाव से

देखकर उसने कपड़े बदले, पैरों में स्लीपरें पहनी और दूकान के द्वार की तरफ़ चली।

शीशे के दूसरी ओर उसे दो परछाइयाँ दिखाई दीं। प्रकाश को तेज करके उसने दरवाजे खोल दिये। अब वह न शोकातुर थी, न विमन, न उदास और न उसका जी रोने को चाहता था। हाँ, हृदय में एक प्रकार की गुदगुदी-सी हो रही थी।

द्वार खुलते ही मोटा-ताजा डाक्टर और दुबला-पतला आवेटोसो भीतर आये।

दवाफ़रोश की स्त्री ने गाउन को एक हाथ से अपनी छाती पर सँभालते हुए पूछा—क्या आज्ञा है?

डाक्टर ने हकलाते हुए घबराकर कहा—चार आने की......देखिए उसे क्या कहते हैं। वह......पिपरमेंट की टिकिया दे दीजिए।

दवाफ़रोश की स्त्री ने आहिस्ते से आलमारी की तरफ हाथ बढ़ाया, बोतल निकाली और टिकिया तौलने लगी। उसके ग्राहक देर तक उसकी पीठ पर नज़र जमाये रहे। डाक्टर गड़ी हुई गहरी आँखों से देख रहा था और आवेटोसो गम्भीरता के साथ।

डाक्टर ने साहस करके छेड़ा—यह पहला अवसर है कि मैंने औषधालय में एक स्त्री को काम करते देखा।

दवाफ़रोश की बीबी ने बिना आँख उठाये ही कहा—मेरे पति अकेले हैं। मैं सब कामों में उनकी सहायता करती हूँ।

'आपकी दूकान कितनी सुन्दर और सजी हुई है! भिन्न-भिन्न रंग की बोतलें, छोटे-बड़े डब्बे, साफ-सुथरे फ़रनीचर......और हाँ, आपको इन विषैली चीजों के बीच में चलते-फिरते डर नहीं लगता?'

दवाफ़रोश की स्त्री ने इसका जवाब न दिया और सावधानी के साथ दवा का पैकेट बन्द किया, मुहर लगाई और डाक्टर के हवाले किया। आबेटोसो ने दाम चुका दिये।

एक मिनट तक सन्नाटा छाया रहा, दोनों एक दूसरे को देखते रहे। दोनों द्वार की ओर बढ़े और फिर एक दूसरे को देखने लगे।

'अच्छा दो आने का सोडा भी दे दीजिए।'

डाक्टर ने इस तरह कहा, जैसे वह कुछ भूल गया हो और फिर याद आ गया हो।

दवाफ़रोश की स्त्री के हाथ फिर आहिस्ता-आहिस्ता आलमारी की ओर बढ़े। बोतल उठाकर उसने दवा तौलना शुरू की।

'क्यों साहब आपकी दूकान में······कोई·····ऐसी दवा·· ··?'

आबेटोसो ने अपनी उँगलियाँ फैलाते हुए रुक-रुककर कहा—कोई ऐसी चीज़······मेरे कहने का मतलब यह है कोई ··कोई पाचक औषधि भी है?

दवाफ़रोश की स्त्री ने उत्तर दिया—है क्यों नहीं।

'वाह! आप स्त्री नहीं देवी हैं, चार आने का वह भी दीजिए।'

दवाफ़रोश की स्त्री ने सावधानी के साथ सोडे का पैकेट बनाया, मुहर लगाई और डाक्टर को दे दिया। फिर वह द्वार से निकल कर घर के अन्दर चली गई।

'सचमुच देवी है'—एक ने चुपके से कहा।

एक मिनट के बाद दवाफ़रोश की स्त्री वापस आई और एक शीशी लाकर मेज़ पर रख दी। वह अभी दवा की कोठरी से निकली थी; इसलिए हाँफ रही थी। उसने ऊँचे स्वर में पूछा—और कुछ?

आबेटोसो बोला—इतनी जोर से बात न कीजिए, आपके पति की आँख न खुल जाय !

दवफ़रोश की स्त्री ने निष्कपट भाव से कहा—इसमें हर्ज ही कौन-सा है।

दवाएँ लेकर दोनों ग्राहक बिदा होने लगे। उनसे हाथ मिलाकर कहा—कभी-कभी इस तरफ भी आ निकला कीजिए। यहाँ अकेले बिलकुल जी नहीं लगता। हमारी दूकान भी बस्ती के बाहर है। उसका हृदय फिर उसी भीषण गति से धड़क रहा था और उसे यह न मालूम था, क्यों ? डॉक्टर ने अपने साथी को मार्मिक नेत्रों से देखकर कहा—ज़रूर आएँगे, जरूर आते रहेंगे।

'धन्यवाद !'—दवाफ़रोश की स्त्री बोली।

'आपके पति स्वप्न में आपको देख रहे होंगे।'—आबेटोसो ने चलते-चलते शिगूफ़ा छोड़ा।

दवाफ़रोश की स्त्री ने कहा—आप भी कैसी बातें करते हैं। आबेटोसो ने दुहराया—कैसी ऐसी बातें वाह ! शेक्सपियर तक ने लिखा है—वह भाग्यवान् है, जो अपनी जवानी में जवान रहे।

अन्त में दोनों बिदा हुए, किंतु मुड़-मुड़कर देखते जाते थे, जैसे वह कोई चीज भूल गये हों।

दवाफ़रोश की स्त्री अपने कमरे में आई और खिड़की से लगकर फिर उसी उद्वेग-सागर में गोते खाने लगी। उसने दोनों ग्राहकों को दूकान से निकलकर कोई बीस क़दम जाते देखा। चलते-चलते दोनों रुक गये और आपस में कुछ बातें करने लगे ! वे क्या बाते कर रहे थे ? उसके मनमें बार-बार यही प्रश्न उठ रहा था। आखिर वे क्या बातें कर रहे थे ? उसका

दिल जोरज़ोर से धड़क रहा था। उसे गर्मी-सी मालूम होने लगी और सिर में चक्कर आ गया। आखिर वे क्या बातें कर रहे थे? उसे ऐसा मालूम होता था, मानों दोनों उसके भाग्य का निर्णय किये दे रहे हैं।

पाँच मिनट बाद डाक्टर अपने मित्र से अलग होकर एक गली में चला गया। आबेटोसो एक क्षण विचार-मग्न खड़ा रहा, फिर दूकान की तरफ बढ़ा। अब वह उसकी दीवार के नीचे था। दो क़दम बढ़ा, फिर पीछे हटा, अन्त में उसने घंटी बजा दी।

दवाफ़रोश ने कठोर स्वर में पूछा—कौन है, क्या है? यह कहकर उसने शुष्क स्वर में अपनी स्त्री को पुकार कर कहा—घंटी बज रही है, कोई गाहक आया है, और तुम यों बैठी हो। क्यों, इसी तरह काम चलेगा? दवाफ़रोश का क्रोध प्रतिक्षण बढ़ता जाता था।

उसने दूकान का दरवाजा खोलकर पूछा—कौन है, क्या है?

आबेटोसो उसकी स्त्री के बदले उसे देखकर घबरा गया और बोला—मुझे चार आने की पिपरमेंट की टिकियां दे दीजिए।

दवाफ़रोश ने आंखें मलते हुए आलमारी की तरफ हाथ बढ़ाया।

दो मिनट बाद दवाफ़रोश की स्त्री ने आबटोसो को दूकान से निकलते देखा। कुछ कदम चलकर उसने पिपरमेंट के पैकेट को जमीन पर फेंक दिया। देखते-देखते वह कुहरे के धुन्ध में गायब हो गया।

दवाफ़रोश की स्त्री ने अपने पति को क्रोध की आंखों से देखते हुए कहा—मेरी तबीयत उलझ रही है, सुनते नहीं हो फिर उसने धीरे से कहा—क्या मुझ अभागिनी पर किसी को दया नहीं आती?

दवाफरोश ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—मेज़ पर चार आने पैसे भूल आया हूँ, उठा लेना।

जरा देर में वह फिर निद्रा में मग्न हो गया।

मुद्रक—बाबू काशीप्रसाद भार्गव, सुलेमानी प्रेस, बनारस।